

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

21 व 28 अगस्त 2016



कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

मूल्य : 10 रु.

वर्ष: 73	अंक: 21-22
सृष्टि संवत् 1960853117	
21 व 28 अगस्त 2016	
दयानन्दब्द 193	
वार्षिक : 100 रु.	
आजीवन : 1000 रु.	
दूरभाष : 2292926, 5062726	

साप्ताहिक आर्य मर्यादा

जालन्धर

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

आर्य मर्यादा साप्ताहिक का श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेषांक



योगेश्वर श्रीकृष्ण

योगीराज ! हे कृष्ण !

—राधेश्याम “आर्य” विद्यावाचस्पति मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

खण्ड दण्ड में हुआ विभाजित, था द्वापर में यह भारत।

जनहित की चिन्ता विस्तृत कर, सब राजा थे ईर्ष्या में रात।

वैदिक धर्म विदीर्ण हुआ था, फैला था अन्याय-अनय।

कंस-जरासंध-दुर्योधन से, करते अत्याचार अभय।

नैतिकता का पतन हुआ था, होता था नारी अपमान।

जुआ सदृश भीषण कुरीतियां, बन बैठी संस्कृति उपमान।

ऐसी भीषण बेला में तुम, भारत की भू पर आए।

शौर्य-पराक्रम से अपने तुम, दानव-दल को मार गिराए।

अत्याचारी थे जितने नृप, सबको तुमने धूल चटाया।

एक सूत्र में बांध राष्ट्र को, वैदिक धर्म ध्वज लहराया।

कुरुक्षेत्र के रण-प्रांगण में, दिया कर्म का नव संदेश।

मोहासक्त पार्थ को तुमने, दिया अमरता का उपदेश।

रणधीरों के मध्य पहुंचकर, द्रुपद-सुता की लाज बचाई।

फटकारा था दुर्योधन को, बुद्धि दुशासन को थी आई।

गो सेवा में निरत रहे तुम, कहलाए थे यों गोबिन्द।

जन-जन के तुम बने प्रणेता, मुरझाए, बिकसे अरविन्द।

कृष्ण तुम्हारा यह भारत अब, आज हो रहा है गारत।

वेद-विमुख है हुए सभी जन, कुत्सित पथ पर हैं वे रत।

शासन तथा प्रशासन सारा, भ्रष्टाचारों में है ग्रस्त।

जन-जन आज राष्ट्र का अपने, अत्याचारों से है त्रस्त।

होती आज प्रताड़ित नारी, बढ़ता है दहेज का दानव।

शोषण-उत्पीड़न बढ़ता है, नारी-जाति का अब अभिनव।

शासक सारे आज राष्ट्र के, स्वार्थ-वृत्तियों में संलग्न।

निर्माणों के ध्वजावाहक हैं, अर्थोपार्जन में निमग्न।

मद्यपान में मस्त हुआ है, युवकों का समुदाय यहां।

किंकर्तव्यविमूढ़, बने हम, दिखता नहीं उपाय यहां।

कंस-जरासंध-शिशुपालों की, सेना बढ़ती जाती है।

प्रतिदिन यहां सहस्रों गाएं, निर्मम काटी जाती हैं।

तुमने ही तो कृष्ण ! कहा था, जब-जब धर्म घटेगा।

अत्याचार-अनाचारों का, दानव यहां बढ़ेगा।

तब-तब भारत की धरती पर, निश्चय ही मैं आऊंगा।

स्थापित कर धर्म पुनः मैं, दानव मार गिराऊंगा।

याद करो संकल्प सुपावन, भारत की भू पर आओ।

दुर्योधन बढ़ रहे, दुशासन, आकर इनको मार गिराओ।

क्रन्दन करती राष्ट्र नारियां, बिलख रही तेरी गैया।

आकर पुनः बचाओ माधव ! डगमग भारत की नैया।।

निःस्पृह कर्मयोगी - श्रीकृष्ण महाराज

लेखक:- श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

योगीराज श्री कृष्ण महाराज भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगीराज श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों के कारण हमारी संस्कृति और सभ्यता जिंदा है। योगीराज श्रीकृष्ण का जीवन एक निःस्पृह कर्मयोगी का रहा है। योगीराज श्रीकृष्ण जी का सम्पूर्ण जीवन धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने के लिए समर्पित रहा। निःस्पृह कर्मयोगी की तरह जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने हमेशा धर्म का साथ दिया।

25 अगस्त को प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाया जा रहा है। यह पर्व प्रेरणा देने वाले होते हैं। अगर इन पर्वों से प्रेरणा ली जाए तभी इन पर्वों का मनाना सार्थक हो सकता है। जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए श्री कृष्ण के जीवन से शिक्षा ग्रहण करें। उनके जीवन का प्रत्येक पक्ष उज्ज्वल और पवित्र है। श्री कृष्ण महाराज महान् योगी थे क्योंकि योगी ही संयमी होते हैं। अपनी सभी इन्द्रियों पर उनका पूर्ण अधिकार था। गृहस्थी होते हुए भी वह तपस्वी थे। उनकी धर्मपत्नी रुक्मिणी ने एक बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसा पुत्र चाहती हूँ। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कि देवी इसके लिए तुम्हें तप करना होगा। इस प्रकार दोनों ने 12 वर्ष तक कठोर तपस्या करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संयमी जीवन व्यतीत किया और उसके फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र रत्न प्रद्युम्न प्राप्त हुआ जो श्रीकृष्ण महाराज की ही प्रतिमूर्ति था।

उनका जीवन एक योगी का जीवन था। गीता के माध्यम से उन्होंने जो योग सम्बन्धित ज्ञान अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया वह भी उनका योगी होने का महान् प्रमाण है। आत्मा और परमात्मा का जो वर्णन उन्होंने गीता में किया है वह एक योगी ही कर सकता है। कितना सारगर्भित लिखा है कि इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न वायु सुखा सकता है। यह न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह नित्य, स्थिर, अचल और सनातन है। आत्मोत्थान के लिए मानव को निरन्तर कार्य करना चाहिए। वह काम, क्रोध और लोभ तीनों को नरक का द्वार बताते हैं जो आत्मा का विकास रोक देते हैं। उन्होंने गीता में शारीरिक तप, वाणी के तप, और मन के तप का वर्णन भी किया है।

श्रीकृष्ण महाराज की तीव्र बुद्धि शारीरिक पराक्रम, गूढ़ नीति और यथायोग्य बर्ताव भी उनके योगी होने का प्रबल प्रमाण है। प्राणायाम के द्वारा जब व्यक्ति अपनी शक्ति का संग्रह करके किसी शत्रु पर प्रहार करता है तो वह बड़े से बड़े पहलवान को भी धराशायी कर देता है। कंस के चाणूर और मुष्टिक महाबली पहलवानों को पराजित करना और मौत के घाट उतारना श्री कृष्ण के महाबली होने का प्रमाण था। यह शक्ति ब्रह्मचर्य, योग और तप की है। उन्होंने जीवन में प्रत्येक कार्य बुद्धिपूर्वक किया है। आततायी कंस व जरासन्ध से लेकर जितने भी दुष्टों का नाश

उन्होंने कराया है। उन सब में उनकी बुद्धि का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है। संयमी और योगाभ्यासी ही ऐसी बुद्धि को प्राप्त कर सकता है।

श्रीकृष्ण महाराज एक महान् तपस्वी और योगी थे। उनको रसिक, गोपियों के साथ नाचने वाला, चोर आदि बताना उनके उज्ज्वल और पवित्र जीवन के साथ अन्याय है, उनकी तपस्या को कलंकित करना है। जिस रूप में आज श्रीकृष्ण महाराज की पूजा की जाती है, श्रीकृष्ण के नाम पर रासलीलाएं की जाती हैं, श्रीकृष्ण का वेश बनाकर लड़कियों के साथ नचाया जाता है, उन्हें चोरी करते हुए दिखाया जाता है वह अत्यन्त घृणित है। जिसने अपने प्रत्येक कार्य में आदर्शों को स्थापित किया है, प्रत्येक कार्य के द्वारा लोगों को कर्तव्य मार्ग पर चलने का संदेश दिया है उसके चरित्र का चोर, कामी, लम्पट के रूप में वर्णन करना उनके साथ अन्याय है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि देखो श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में योगीराज श्रीकृष्ण महाराज का कितना मान था यह उनके विचारों से जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण के इस उज्ज्वल और पवित्र जीवन की धवल कीर्ति को चारों ओर फैलाएं यह हमारा भी कर्तव्य हो जाता है। आज समाज के सामने उनके उज्ज्वल जीवन का वर्णन करने की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियां और मत लोगों में फैले हैं उन्हें तभी दूर किया जा सकता है यदि उनका निष्कलंक जीवन लोगों के सामने आ जाए। पुराणों में लिखी गलत बातों को लेकर जो अपमान इस महापुरुष का किया जाता है उसका निराकरण करें। उनका प्रमाणिक जीवन लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। जितना इस महापुरुष के जीवन को कलंकित किया गया है उतना किसी का भी नहीं हुआ है।

आओ जन्माष्टमी के इस पवित्र पर्व पर सर्वगुण सम्पन्न इस महामानव का सच्चा चरित्र और स्वरूप सर्वसाधारण तक पहुंचाने का व्रत लें। उनके उज्ज्वल और निष्पाप जीवन से जनता को अवगत कराएं। उन्होंने जो असाधारण कार्य अपनी योगबुद्धि के द्वारा किए हैं, महाभारत में जो अपना आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, गीता के रूप में संसार को जो अलौकिक ज्ञान दिया है, अर्जुन को जो कर्तव्य पालन करने का पाठ पढ़ाया है उन कार्यों से जनता को अवगत कराएं ताकि इस महामानव के सम्बन्ध में जो गलत धारणाएं समाज में फैली हुई हैं उन्हें दूर किया जा सके।

सर्वगुण सम्पन्न-योगीराज श्रीकृष्ण

लेखक- श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

योगीराज श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरुष थे जिनमें सभी गुणों का समावेश था। एक महापुरुष के अन्दर जो गुण होने चाहिए वे सभी श्रीकृष्ण जी के जीवन में थे। श्रीकृष्ण का जीवन निःष्कलंक और निष्पाप था। महर्षि दयानन्द के अनुसार श्रीकृष्ण जी महाराज आदर्श गुणों का भण्डार थे। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन ऐसा कोई भी कर्म नहीं किया जिससे उनका यश कलंकित हो। श्रीकृष्ण के जीवन का उद्देश्य था **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**। वह एक गृहस्थी होते हुए भी एक महान् कर्मयोगी थे। श्रीकृष्ण के जीवन का एक-एक क्षण कर्म करते हुए व्यतीत हुआ। श्रीकृष्ण महाराज जिन्होंने अपने गृहस्थ धर्म का पूरी तरह से पालन किया। कर्म करने में उनको पूरा विश्वास था, फल की इच्छा में नहीं। उन्होंने अपने जीवन में जो भी कार्य किया परहित की भावना से किया। गोकुल में रहते हुए वह केवल अपने पालक नन्द के लिए ही नहीं बल्कि सभी गोकुल निवासियों के लिए कार्य करते रहे हैं। कंस को मारकर उन्होंने मथुरा का राज्य भी स्वयं नहीं लिया परन्तु परहित के लिए उन्होंने कंस की मृत्यु के बाद जरासन्ध द्वारा उत्पन्न की गई स्थिति को देखते हुए मथुरा को भी छोड़ दिया। जब पाण्डवों को खाण्डव वन दे दिया गया और वह यह विचार कर रहे थे कि वन को कैसे आबाद किया जाएगा तब श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्म करने की प्रेरणा दी और उनकी प्रेरणा से पाण्डवों ने जंगल में मंगल कर दिया। जब युद्ध के समय दोनों सेनाएं आमने सामने खड़ी हो गई और अर्जुन, भीष्म, द्रोण आदि के साथ युद्ध करने से इन्कार कर देता है तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये प्रेरित किया।

श्रीकृष्ण धर्म के तत्त्व को जानते थे और प्रत्येक कर्म को ज्ञानपूर्वक करते थे और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देते थे। वह पाण्डवों का दूत बनकर दुर्योधन को समझाने का प्रयास करते हैं और जब दुर्योधन स्पष्ट कह देते हैं कि वह युद्ध के बिना सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं है तब श्रीकृष्ण जी दुर्योधन को स्पष्ट कह देते हैं कि तुम्हारा यह कर्म राज्य को मिट्टी में मिला देगा। इसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। तुम

बुद्धिपूर्वक विचार करो, क्यों हस्तिनापुर को वीरान कराना चाहते हो।

श्रीकृष्ण का जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। वह महान् योद्धा, ज्ञानी और विद्वान् थे। तभी तो उन्होंने गीता के माध्यम से उपनिषदों का ज्ञान दिया। भगवान् श्रीकृष्ण एक महान् योगी थे और उन्होंने गीता के माध्यम से इसका सन्देश जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। जहां उन्होंने कर्म, भक्ति, ज्ञान और धर्म के तत्त्वों को प्रचार और प्रसार किया वहां राजनीति के तत्त्वों का भी विवेचन किया। वह सारे भारत को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। उस समय भी भारत में छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ते रहते थे। उन्होंने शक्तिशाली पाण्डवों के माध्यम से सभी राजाओं को एक बार अपनी नीति के सूत्र में बांध दिया था। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ को सफल बनाने वाले भी वही थे। जरासन्ध जैसे शक्तिशाली राजा को उन्होंने अपनी नीति के द्वारा ही मौत के घाट उतरवाया था। शिशुपाल जैसे अहंकारी राजा को उन्होंने बड़ी नीति से स्वयं ही समाप्त कर दिया था। वह युद्ध नहीं चाहते थे परन्तु दुर्योधन की राज्य प्राप्ति की लालसा ने उनके सारे किए कराए पर पानी फेर दिया। वह प्रसन्न थे कि पाण्डवों का राजसूय यज्ञ सफल हो गया और भारत एकसूत्र में बन्ध गया परन्तु उनको क्या पता था कि धृतराष्ट्र और दुर्योधन स्वार्थ में इतना अन्धे हो गए हैं कि वह सभी कुछ चौपट करके रख देंगे।

आखिर कौरवों और पाण्डवों को जब वह युद्ध करने के लिए खड़ा पाते हैं और यह समझते हैं कि पाण्डवों के साथ अन्याय हो रहा है वह तब अपनी नीति से ही अर्जुन के सारथि बन जाते हैं और निपुणता से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन को भी मरवा देते हैं। महाभारत के सारे युद्ध में श्रीकृष्ण की नीति दिखाई देती है। कौरव पक्ष में इतने बड़े-बड़े योद्धा थे कि पाण्डव पक्ष में उनका मुकाबला करने के लिए अर्जुन के सिवाय कोई योद्धा उपस्थित नहीं था। दादा भीष्म पितामह, अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाने वाले द्रोणाचार्य भी उनके सामने थे परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी नीति निपुणता के द्वारा

(शेष पृष्ठ 8 पर)

महाभारत और श्रीकृष्ण

✽ लेखक: श्री सुधीर शर्मा कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ✽

धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने के लिए प्रयत्नशील, महाभारत के आदर्श कूटनीतिज्ञ योगीराज श्रीकृष्ण के उज्ज्वल और प्रेरणादायक जीवन चरित्र के साथ जितना अन्याय किया गया है उतना किसी अन्य महापुरुष के साथ अन्याय नहीं हुआ है। पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण के स्वरूप को देखा जाए तो कल्पना भी नहीं कर सकते कि यही श्रीकृष्ण है जिसने महाभारत में धर्म की स्थापना के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। एक महानायक को भोगी, लम्पट, माखनचोर, रसिक बना दिया गया, जिस निष्कलंक एवं निर्दोष चरित्र के लिए महर्षि दयानन्द ने लिखा था कि- देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आस पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी पर लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत निन्दा किया करते हैं। जो यह भागवत नहीं होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की निन्दा क्योंकर होती। और जिस निर्दोष व्यक्तित्व के लिए बंकिम चन्द्र ने लिखा है कि उनके जैसा सर्वगुणान्वित और सर्वपाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है।

महाभारत के श्रीकृष्ण के चरित्र की पावनता की पुष्टि इन दोनों के विचारों ने एकस्वर में की है और यह यथार्थ भी है। महाभारत में श्रीकृष्ण का आदर्श चरित्र चित्रित है। वहां उन्हें अत्यन्त संयमी, सर्वगुण सम्पन्न महामानव चित्रित किया गया है। आज जो गोपियों के साथ नाचने के, रासलीला रचाने के, स्नान करती स्त्रियों के वस्त्र चुराने के माखन चोरी करने के प्रसंग देखने को मिलते हैं उनका महाभारत में लेशमात्र भी आभास नहीं होता। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण एक पत्नीव्रती थे और वह भी अत्यन्त संयमी। एक इकलौते पुत्र की प्राप्ति के लिए उस दम्पति ने 12 वर्ष का घोर तप किया था तब जाकर

प्रद्युम्न जैसे पुत्र रत्न को प्राप्त किया था। ऐसा संयमी व्यक्ति चोरजार और रसिक कैसे हो सकता है। जिस राधा का नाम श्रीकृष्ण के साथ जोड़ दिया गया है उसका सम्पूर्ण महाभारत में कहीं भी वर्णन नहीं है। सम्पूर्ण महाभारत श्रीकृष्ण की गौरवगाथा का गान कर रहा है। यदि महाभारत से श्रीकृष्ण को अलग कर दिया जाए तो महाभारत में शेष कुछ नहीं बचता। महाभारत में श्रीकृष्ण के जीवन में आर्यत्व के दर्शन होते हैं। विद्यार्थी के रूप में, गृहस्थी के रूप में, राजा के रूप में, योद्धा के रूप में, मित्र के रूप में सभी में आदर्श मानदण्डों को स्थापित किया है। तभी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर सर्वश्रेष्ठ एवं पूज्य व्यक्ति के रूप में उन्हें अर्घ्य दिया गया। युधिष्ठिर के पूछने पर कि सबसे पूर्व अर्घ्य किसे दिया जाए, भीष्म जी ने श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए कहा कि इस विराट् सभा में जहां समस्त भारत के सुविख्यात ब्राह्मण, धुरन्धर विद्वान्, वेदों के मर्मज्ञ, युद्धविद्या विशारद, शूरवीर क्षत्रिय, वीर राजा और महाराजा उपस्थित हैं, उन सबमें श्रीकृष्ण ही सबसे बढ़ कर हैं। ये वेद वेदांगों के मर्मज्ञ हैं ही, बलशाली भी सबसे अधिक हैं। दान, दक्षता, शास्त्रज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि सभी सद्गुण श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान हैं। ये सभी राजाओं में अपने तेज, बल और पराक्रम से उसी प्रकार विद्यमान हैं। ये सभी राजाओं में अपने तेज बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं जैसे नक्षत्रों में सूर्य, अतः ये ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।

यह हैं महाभारत के श्रीकृष्ण किन्तु आज यह स्वरूप कहाँ तिरोहित हो गया है? आज पुराणों के श्रीकृष्ण ही सर्वत्र दिखाई देते हैं। महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण के चरित्र का चित्रण करने पर तो कोई सहसा विश्वास नहीं करता। मनुष्य अपने गुणों के द्वारा उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति से महामानव एवं युगपुरुष के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण श्रीकृष्ण का जीवन है। कारागार की विवशतापूर्ण परिस्थितियों में जन्म लेकर भी

(शेष पृष्ठ 8 पर)

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में श्रीकृष्ण

लेखक:- श्री अशोक परूथी रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब

ऋषि दयानन्द ने भारतीय सत्य सनातन धर्म का रूप प्रत्यक्ष किया। वेदों पर आधारित उस रूप का मन्थन किया, मनन किया और सारी आयु उसका ही प्रचार किया। उस सत्य सनातन धर्म के अन्तर्गत वेद हैं, उपनिषद हैं, आर्ष ग्रन्थ हैं और जीवन के घटक महापुरुषों की एक लम्बी परम्परा है। उस महान् परम्परा के धन्य श्री राम और श्री कृष्ण हैं। यह हो ही नहीं सकता था कि ऋषि दयानन्द भगवान् श्री कृष्ण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट न करते। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्रीकृष्ण का स्वरूप दूसरों से अलग था। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्रीकृष्ण एक नीतिवेत्ता, योगी, ईश्वर उपासक और महान योद्धा थे।

योगीराज श्री कृष्ण का नाम हिन्दू मानस में पूर्ण रूप से व्याप्त है। उनका जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक बहुत अधिक लौकिक तथा अलौकिक घटनाओं द्वारा बुना गया है। न जाने कितने चमत्कारिक प्रसंगों की उद्भावना हो चुकी है और अभी हो रही है। भारतीय साहित्य का कोई अंग, काव्य, नाटक, गद्य, पद्य ऐसा नहीं जो भगवान् श्री कृष्ण से अनुप्राणित न हो। ऋषि दयानन्द वस्तुतः ऋषि थे। वे लगातार सत्य दर्शन के लिए प्रयत्नशील रहे। उनकी श्रद्धा का केन्द्र केवल परमात्मा की पवित्र वेदवाणी थे। इसके अतिरिक्त सभी शास्त्रों को, सिद्धान्तों को, क्रियाकलापों को और युगपुरुषों के जीवन को वे तर्क की कसौटी से परखते थे। परमात्मा ही उनके लिए एक जगनियन्ता और स्रष्टा था, शेष सब जीव अल्पज्ञ तथा मर्यादित शक्तियों के स्वामी थे। ऋषि दयानन्द को इतना समय नहीं मिला कि वे एक-एक महापुरुष के जीवन का निरीक्षण करते परन्तु उन्होंने अपना सूक्ष्म दृष्टिकोण सब महोपुरुषों के विषय में दे दिया है और उसे पल्लवित करने का कार्य आर्य जनों के लिए छोड़ दिया है।

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों में कोई जन्म लीला के चमत्कारों पर मुग्ध है, कोई बाल गोपाल के खेलों का रहस्य खोलता है, कोई रासलीला रचाकर उसका वर्णन करता है, कोई उसे राधा के साथ जोड़कर उसकी पूजा करता है, कोई गोपियों के साथ नचाकर नाचते-गाते हुए उसे मानते हैं और कोई गीता योग के चक्रव्यूह में मुग्ध होकर भटक रहा है। पर ऋषि की दिव्य दृष्टि ने कृष्ण के विलक्षण शौर्य सम्पन्न और राजनीति निष्णान्त राष्ट्र पुरुष रूप को परखा और देखा।

जैसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विकास कर एक विशाल भारतीय राष्ट्र का निर्माण किया था जिसकी सीमाएं नर्मदा से लेकर कन्धार

तक विस्तृत थी, ठीक इसी प्रकार भगवान् श्री कृष्ण एक विलक्षण राष्ट्र पुरुष थे। उन्होंने पांच पाण्डवों का विकास किया। क्षय रोग ग्रस्त पिता की वन भ्रमण के समय मृत्यु हो गई। माद्री पति के साथ सती हो गई। माता कुन्ती को लेकर जब पाण्डु पुत्र हस्तिनापुर पहुंचे तो धृतराष्ट्र राजा थे और उनका परिवार राज्य का आनन्द ले रहा था। राज्य के वैभव को सरलता से कौन छोड़ता है? अपने आप आपद् ग्रस्त, मथुरा छोड़कर द्वारिका में बसे कृष्ण ने लगभग एक सहस्र मील दूर हस्तिनापुर में राजनीति का ऐसा चक्र चलाया कि वही पाण्डुपुत्र एक महान् राष्ट्र के अधिनायक बन गए। सम्पूर्ण महाभारत युद्ध में कृष्ण ने कहीं भी शस्त्र नहीं उठाया। युद्ध के बाद अश्वमेध यज्ञ में असम से लेकर गान्धार तक के राज वंशों को एक सूत्र में गूँथ कर महाभारत की विशाल कल्पना साकार की गई।

इस विशाल राष्ट्र निर्माण के कार्य का आधार केवल कृष्ण थे। शेष भीष्म पितामह से लेकर सभी उनके हाथ की कठपुतलियां थे। सम्पूर्ण महाभारत का आधार कृष्ण थे। वह कृष्ण जो अवतार नहीं, चमत्कारों से, दैवी माया से घिरा कृष्ण नहीं, अपितु अपूर्व राजनीति, राष्ट्रनीति, और धर्मनीति के पारंगत राष्ट्र पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण।

ऋषि की दिव्य दृष्टि के सामने भगवान् कृष्ण का वह दिव्य रूप था। इस विशुद्ध दिव्य रूप का साक्षात्कार ऋषि ने सैकड़ों वर्षों से प्रचलित अनेकों परम्पराओं के आधारभूत सौंदर्यपूर्ण, रहस्यपूर्ण, लीलामय, चमत्कार रूपों के सघन वन में किस प्रकार किया? यह अपने आप में एक चमत्कार है। महर्षि दयानन्द श्रीकृष्ण के उस विशुद्ध स्वरूप का प्रचार करना चाहते थे जिसके द्वारा श्रीकृष्ण नीतिमत्ता, विद्वत्ता का जनसाधारण को ज्ञान होता, जो पौराणिक कल्पनाओं के बिल्कुल विपरीत था। समाज में आज जिस स्वरूप को जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जाता है श्रीकृष्ण उसकी वास्तविकता से कोसों दूर हैं। पुराणों में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप वर्णित किया गया है वह सच्चाई से कोसों दूर है।

आर्य बन्धुओं श्रीकृष्ण जनमाष्टमी का पर्व मनाते हुए हम महर्षि दयानन्द द्वारा वर्णित एवं महाभारत में अनुप्राणित श्रीकृष्ण के आदर्श स्वरूप को अपने सामने रखें। महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने श्रीकृष्ण के जिस स्वरूप का मूल्यांकन किया है वही वास्तव में अनुकरणीय और प्रेरणादायक है। पुराणों के कुत्सित और लौछित श्रीकृष्ण के स्थान पर हम महर्षि दयानन्द द्वारा वर्णित स्वरूप का समाज में प्रचार करें। लोगों को श्रीकृष्ण की वास्तविकता का बोध कराएं तभी श्रीकृष्ण जनमाष्टमी का पर्व मनाना सार्थक हो सकता है।

ईश्वर भक्त-योगीराज श्रीकृष्ण

लेखक:- श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

योगीराज श्रीकृष्ण परमात्मा के भक्त थे। वे नित्य प्रति सन्ध्या उपासना और यज्ञ किया करते थे। सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा की सत्ता पर विश्वास तथा उसके शुद्ध और सत्य स्वरूप का ज्ञान कराने वाली उस परमदेव की कल्याणी वेद वाणी पर आस्था एवं निष्ठा रखते हुए उसके अनुसार अपने गुण, कर्म और स्वभाव को सुधारना ही सच्ची आस्तिकता है। इस प्रकार अपने जीवन को दूसरों को सुधारने में लगा देना आस्तिकता के उस भाव को प्रचारित करता है। योगीराज श्रीकृष्ण में यह दोनों गुण उपलब्ध होते हैं। प्रभु के उपासक श्री कृष्ण प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर परमपिता परमात्मा का चिन्तन और मनन योगारूढ़ होकर किया करते थे।

आस्तिक और प्रभुभक्त श्री कृष्ण सायं प्रातः नियत समय पर सन्ध्या और अग्निहोत्र किया करते थे। इसका वर्णन महाभारत में अनेक स्थलों पर मिलता है। पाण्डव तेरह वर्ष का वनवास समाप्त करके जब वापिस आए तो श्री कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन को समझा बुझाकर सन्मार्ग पर लाने और पाण्डवों को उनका न्याय भाग दिलाने के हस्तिनापुर के लिए चले। मार्ग में सायंकाल हो गया। सच्चा प्रभुभक्त, आस्तिक्य भावना से भरपूर प्रातः और सायंकाल समाप्त होने पर सभी कर्मों का परित्याग करके सन्ध्या वन्दना करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। श्री कृष्ण जैसा योगी, तपस्वी और प्रभुभक्त इस कर्तव्य से कैसे विमुख हो सकता था। महाभारत में लिखा है-

रथ से शीघ्र उतरकर और विधिवत् शौच कर्म से निवृत्त होकर तथा रथ को खोलने का आदेश देकर सन्ध्योपासना में बैठे। इस प्रकार महाभारत को पढ़ने से ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण प्रभु के भक्त थे, नित्य प्रति सन्ध्या वन्दना किया करते थे। जो लोग उन्हें परमात्मा का अवतार मानते हैं उन्होंने कभी श्री कृष्ण के सच्चे स्वरूप को जानने का प्रयत्न नहीं किया।

उपास्य और उपासक में भेद होता है। उपास्य सर्वगुणसम्पन्न होता है और उपासक सीमित शक्ति वाला होता है। उपासक के अन्दर उपास्य के द्वारा ही दिव्य गुण और अलौकिक प्रतिभा आती है। श्री कृष्ण का नियमित रूप से सन्ध्यानुष्ठान और प्रभु का चिन्तन करना उनके उपासक होने का प्रबल प्रमाण है। परन्तु प्रश्न यह है कि श्री कृष्ण योगावस्था में अहर्निश जिस

परमात्मा का ध्यान लगाया करते थे उसका स्वरूप क्या है। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए आठवें अध्याय के 9,10 वें श्लोक में श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं जो व्यक्ति इस संसार से प्रस्थान के समय अचल मन से, भक्ति से सराबोर होकर और योग बल से भृकुटी के बीच में अच्छी तरह प्राण को स्थापित करके उस क्रान्त द्रष्टा, पुरातन, नियन्ता, अणु से भी अणु, सबके धारक और पालक, अचिन्त्य, सूर्य के समान तेजस्वी, अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म का स्मरण करता है वह उस प्रकाश स्वरूप दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है। अगले श्लोक में श्री कृष्ण महाराज कहते हैं-

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागः।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

अर्थात् वेदों के ज्ञाता जिस परब्रह्म को अक्षर नाम से पुकारते हैं, वीतराग यति लोग जिसका ध्यान लगाते हैं, ब्रह्मचारी जिसकी इच्छा के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, उस ओंकार पद के मैं तेरे लिए संक्षेप में वर्णन करूंगा। इससे स्पष्टतः सिद्ध होता है कि महाराज श्री कृष्ण अन्य वेदानुयायी ऋषि मुनियों के समान परमात्मा के मुख्य और निज नाम ओ३म् का ही स्मरण किया करते थे तथा योगारूढ़ होकर उसी का ध्यान लगाते थे। जगनियन्ता परमात्मा के स्वरूप, उसको प्राप्त करने की विधि क्या है इसका उत्तम ढंग से वर्णन श्री कृष्ण ने किया है। वे स्वयं उस अजन्मा, अकाय, सर्वव्यापक, निराकार और निर्विकार ओ३म् का ही ध्यान प्रातः सायं किया करते थे। उसी सर्वरक्षक परमात्मा की उपासना वे किया करते थे जिसे गीता में उन्होंने सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, दोषों से रहित, विकारों से रहित, दुखों से छूटा हुआ, सुखस्वरूप माना है।

अतः जनमाष्टमी का पर्व मनाते हुए हमारा कर्तव्य बनता है कि हम श्री कृष्ण के सम्बन्ध में फैली निराधार भ्रान्तियों को दूर करें। आदर्श गुणों से सम्पन्न, योगीराज, नीतिवेत्ता, ईश्वर के उपासक, श्री कृष्ण का चरित्र जन साधारण में प्रस्तुत करें ताकि आम जनता को उनके आदर्श और प्रेरणादायक चरित्र का ज्ञान हो सके। इस पर्व को मनाते हुए श्री कृष्ण के प्रभुभक्त और एक ईश्वर के उपासक स्वरूप का गुणगान करें और उनके जीवन से प्रेरणा लें तभी हमारा जनमाष्टमी के पर्व को मनाने की सार्थकता है।

अखण्ड भारत के निर्माता-श्रीकृष्ण

ले:- श्री स्वतन्त्र कुमार उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

श्री कृष्ण राष्ट्रीय एकता के अग्रगण्य नेता थे। पाण्डवों को राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा के पीछे श्रीकृष्ण के सम्मुख यही लक्ष्य था कि इस उपाय से सारा देश एक झण्डा, एक संविधान और एक केन्द्र के नीचे आए और अखण्ड एवं विशाल राष्ट्र का निर्माण हो। श्रीकृष्ण ने पश्चिम में द्वारिकापुरी से लेकर मणिपुर के पूर्वोत्तर अंचल में अवस्थित सारे राष्ट्र को एकसूत्र और एक सुदृढ़ केन्द्र के अधीन करके सारे देश को इतना बलवान और अपराजेय बना दिया था कि अगले चार हजार वर्षों तक विदेशी शक्तियां आर्याचर्त की केन्द्रीय सत्ता को खण्डित नहीं कर सकी। वस्तुतः यह श्रीकृष्ण की दूर दृष्टि का ही फल था कि अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बंटा भारत महाभारत के रूप में परिवर्तित हुआ। इस सारे विवरण को प्रस्तुत करने वाले महाग्रन्थ को इसी परिवर्तन के कारण महाभारत नाम दिया गया। यह श्रीकृष्ण के सत्परामर्श का ही फल था कि यह विराट परिवर्तन बिना रक्तपात और संघर्ष के सम्पन्न हुआ। आधुनिक दिल्ली के समीप खाण्डव वन को साफ कर जंगली हिंसक पशुओं से मुक्त कर इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ राजधानी बनाई। उस समय युधिष्ठिर के मन में राजसूय यज्ञ के माध्यम से देश में सुदृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित करने की इच्छा हुई। यह यज्ञ करने की सलाह देने वाले तो अनेक मिले परन्तु श्रीकृष्ण पहले व्यक्ति थे जिन्होंने चेतावनी दी कि जरासन्ध के जीते जी यह राजसूय यज्ञ पूर्ण नहीं होगा। उसे परास्त करने पर यह महान् कार्य सफल हो सकेगा।

उस समय श्रीकृष्ण का परामर्श यही था कि भारत का सम्राट वही हो सकेगा जो जरासन्ध को युद्ध में जीते। युधिष्ठिर ने कहा -मुझे यह सम्राट पद नहीं चाहिए। नीतिज्ञ श्रीकृष्ण महाराज का परामर्श था-सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। यदि चुपके से बिना शोर मचाए जरासन्ध के महल में पहुंचकर जरासन्ध को द्वन्द्वयुद्ध की चुनौती दी जाए तो इष्ट की सिद्धि हो सकती है। श्रीकृष्ण की नीतिमत्ता से भीम ने द्वन्द्वयुद्ध में जरासन्ध को मार दिया। उसके मारे जाते ही कैदी

राजा कैद से छुड़ा दिए गए। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की चर्चा कर उन्हें युधिष्ठिर के साम्राज्य में सम्मिलित होने का आमन्त्रण दिया। मगध का राजसिंहासन जरासन्ध के पुत्र सहदेव को दे दिया गया। इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ आयोजित किया गया। उससे पूर्व अर्जुन, भीम, सहदेव और नकुल ने उत्तर, पूर्व, दक्षिण, और पश्चिम दिशाओं में अफगानिस्तान से लेकर उत्तरपूर्वी तथा सम्पूर्ण दक्षिणी पठार के समस्त राज्यों को जीत लिया। राजसूय यज्ञ में चर्चा हुई कि किस को अर्घ दिया जाए। उस समय भीष्मपितामह ने सत्परामर्श दिया कि श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया जाए क्योंकि वह भारतभूमि में ही नहीं, समस्त भूमण्डल में इस पूजा के अधिकारी हैं। चेदि नरेश शिशुपाल ने इसका विरोध किया तो श्रीकृष्ण ने उसका प्राणान्त कर दिया। राजसूय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। श्रीकृष्ण की बुद्धि और पाण्डव भाईयों के बल पराक्रम से भारत का केन्द्रीय शासन मगध से हटकर इन्द्रप्रस्थ में प्रतिष्ठित हुआ। उसे युधिष्ठिर ने जुए के एक दांव में गंवा दिया। पाण्डव वनवास को जाने वाले थे कि दूसरे सम्बन्धियों के साथ श्रीकृष्ण भी पहुंचे। द्रौपदी के रोने पर सान्त्वना देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा-मैं होता तो यह जुआ होने ही नहीं देता, अब तो जो हुआ सो हुआ। किसी प्रकार से ये तेरह वर्ष समाप्त हो जाएं फिर इस साम्राज्य की पुनः स्थापना करेंगे। वनवास से लौटने के बाद कौरवों ने पाण्डवों का राज्य लौटाने से इन्कार कर दिया। मध्यस्थता के लिए श्रीकृष्ण के जाने पर दुर्योधन ने कहा कि-वह सुई की नोक के बराबर भूमि भी युद्ध के बिना नहीं देगा।

18 दिन तक कुरुक्षेत्र में भीषण संग्राम हुआ। उसमें सेनाओं और योद्धाओं का भीषण संहार हुआ। देश में पाण्डवों की विजय से पुनः पाण्डवों का केन्द्रीय शासन प्रतिष्ठित हुआ। राजसूय यज्ञ हुआ। उसके माध्यम से देश में पुनः एक केन्द्रीय शासन की प्रतिष्ठता हुई। जब तक जरासन्ध का डर था तब तक यादव योद्धाओं में आपसी स्नेह भाईचारा था, परन्तु युधिष्ठिर का राज्य स्थापित होने पर यदुवंशी भोग विलास में

श्रावणी पर्व पर सभी आर्य संकल्प लें

वेद की ज्योति जलती रहे

✽ लेखक:- श्री सुरेश शास्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ✽

वेदज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं। वेदों की महिमा अपार है। वेद मानव मात्र के प्रकाशस्तम्भ हैं और शक्ति के आदिप्रोत हैं। वेद का प्रकाश संसार भर में फैलाकर मानव जीवन में व्याप्त निराशा, अज्ञान, अन्धकार, दुर्विचार, अनाचार, व्यभिचार, मानसिक आधि-व्याधि और जीवन में विचारों के दिशाभ्रम को दूर किया जा सकता है। वेदों के पठन पाठन और स्वाध्याय एवं संयम से पवित्र वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता का प्रकाश सर्वत्र फैल सकता है। वेद आदि सृष्टि से ही विश्ववारा प्रथमा संस्कृति है। वह हमें पवित्र आदर्शों पर चलने की शिक्षा देते हैं। वह वैदिक संस्कृति हमें प्रथम वरूण, मित्र, अग्नि के समान बनने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार धन और बल के दान की भावना, पाप और असत्य के उन्मूलन की भावना एवं विश्वमैत्री की भावना तथा विश्व में वेदज्ञान के प्रचार-प्रसार की वैदिक संस्कृति इन संस्कारों से हमें पवित्र एवं निष्पाप बना देती है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भर देती है, साथ ही मनुर्भव के पवित्र मानव निर्माण का संदेश भी देती है। इसलिए यजुर्वेद में कहा गया है- सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्वारा अर्थात् वह वैदिक संस्कृति ही संसार की सर्वप्रथम विश्ववारा संस्कृति है। संसार में प्रसार करने योग्य है।

सारे संसार को आदि सृष्टि से लेकर ज्ञान-विज्ञान का पाठ पढ़ाने का सर्वप्रथम श्रेय वेदों को ही है। जहां वेदों की ज्योति है, वहां ज्ञान विज्ञान का प्रकाश है। वहां सर्वत्र शान्ति है। वहीं पर सर्वांगीण उन्नति है। सुख, शान्ति और मानवमात्र का विकास है। वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का कारण है। वेदज्ञान विश्वबन्धुत्व का प्रेरक है और विश्वधर्म का संस्थापक है। वेद सनातन ईश्वरीय वाणी है। अतएव वेद सामाजिक क्रान्ति का सन्देशवाहक भी है। राष्ट्र की एकता का प्रबल प्रचारक भी है। विश्वधर्म विश्व वैदिक संस्कृति का आदिम उपदेश भी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मार्गनिर्देशक भी है। शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक, राजनीतिक उन्नति का सर्वोत्तम विधिविधायक भी है। संसार में ऐसी कौन सी समस्या है? जिसका समाधान वेदों में नहीं है। एक छोटे से तिनके से लेकर पृथिवीपर्यन्त तथा सूर्य से लेकर चन्द्र तारागण पर्यन्त तथा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमात्मा तक का ज्ञान-विज्ञान वेदों में है। उसे भी पाकर मनुष्य मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

कुछ व्यक्ति प्रश्न करते हैं कि वेदों में क्या है? इसमें हमारा स्पष्ट उत्तर

है कि वेदों में क्या नहीं है? वेदों में अध्यात्मज्ञान तो है ही, भौतिक विज्ञान की भी पराकाष्ठा है। वेदों में धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुविज्ञान शास्त्र, कलाकौशल विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, औषधविज्ञान, चिकित्साविज्ञान, कृषिविज्ञान आदि मनुष्यमात्र के लिए उपयोगी सब कुछ है। परमात्मा का दिया सम्पूर्ण नित्य ज्ञान इनमें भरपूर है। यह वेदों की वाणी हमारे लिए भोग व अपवर्ग मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। निःश्रेयस का मार्ग श्रेयस्कर बताती है।

वेद का ज्ञान प्राणीमात्र के लिए उपयोगी है।

श्रावणी का पर्व वेद के स्वाध्याय का पर्व है। वेद की ज्योति का प्रज्वलित रखने के लिए वेदों का पठन-पाठन आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा है कि- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आज पुनः इस उद्घोष का सार्थक करने की आवश्यकता है। लोगों का वेद का ज्ञान कराने के लिए उनके अन्दर स्वाध्याय करने की भावना उत्पन्न करनी होगी। मनुष्य वास्तव में मनुष्य तभी बनता है जब वह स्वाध्याय एवं उत्तम ज्ञान के द्वारा चिन्तन और मनन करता है। मत्वा कर्माणि सीव्यति के अनुसार जो व्यक्ति शास्त्रों के आधार पर सोच विचार कर कर्म करता है वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है।

श्रावणी का पर्व बुद्धि के जागरण का पर्व है। ज्ञान के प्रकाश से अपने जीवन को प्रकाशित करने का पर्व है। वेद की ज्योति को घर-घर पहुंचाने का पर्व है। सभी आर्यों को आज एक संकल्प करने की आवश्यकता है कि हम वेद का स्वाध्याय करेंगे और दूसरों को भी प्रेरित करेंगे। वेद के प्रचार-प्रसार से ही राष्ट्र का निर्माण होगा। राष्ट्र में पैदा हो रही अनेक प्रकार की कुरीतियों, बुराईयों को दूर करने के लिए वेदों का ज्ञान आवश्यक है। राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक वेद के अनुसार आचरण करें तो राष्ट्र से विद्वेष, वैर की भावना को समाप्त किया जा सकता है। आपसी भाईचारे की भावना को वेद के आधार पर कायम किया जा सकता है। श्रावणी का पर्व प्रतिवर्ष हमें स्वाध्याय की भावना जागृत करने के लिए प्रेरित करता है। वेद हमारी संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। इसलिए हम सभी आर्यों का कर्तव्य है कि वेद के प्रचार-प्रसार की ओर विशेष ध्यान दें ताकि आम जनता में वेदों के प्रति जागरूकता पैदा हो।

पड़ गए और कुछ ही वर्षों में आपस में लड़ कर मर गए। यादव वंश के इस प्रकार नष्ट हो जाने से दुःखी बलराम और श्रीकृष्ण ने परलोक गमन किया।

श्रीकृष्ण की राजनीतिक विचारधारा का लक्ष्य लोक कल्याण, जनहित के लिए अराजकता, अन्याय और शोषण की प्रवृत्ति समाप्त कर एक धर्मराज्य की प्रतिष्ठा करना था। उस लक्ष्य की पूर्ति में वे दो बार सफल हुए। श्रीकृष्ण अपने युग के सर्वोपरि राजनीतिज्ञ ही नहीं थे बल्कि वह समाज सुधारक, अध्यात्म साधना के पथिक थे। गीता के माध्यम से उन्होंने किंकर्तव्यविमूढ अर्जुन को कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। उन्होंने जल में रहने वाले कमल की तरह संसार में रहते हुए सांसारिक वासनाओं से निर्लिप्त रहकर कर्तव्य की भावना से आचरण करने के सच्चे योग की शिक्षा दी। भारत को एकसूत्र में बांधकर भी वह किसी भी उपलब्धि से दूर रहे। अनासक्त कर्मयोग का उनका सिद्धान्त हमारे देशवासी श्रीकृष्ण से

पृष्ठ 2 का शेष-सर्वगुण सम्पन्न-योगीराज श्रीकृष्ण

इन सबको मौत के घाट उतार दिया। इस युद्ध में धर्म की विजय तो हुई परन्तु यह विजय बहुत मंहगी पड़ी। देश के बड़े-बड़े योद्धा, महान् विद्वान् तपस्वी और ज्ञानी लोग भी इस युद्ध की आग से न बच सके। इस युद्ध ने भारत को बहुत पीछे धकेल दिया परन्तु इसके सिवा कोई रास्ता नहीं था।

25 अगस्त 2016 को श्रीकृष्ण जनमाष्टमी का पर्व आ रहा है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाएँ जनमाष्टमी के पर्व को उत्साह के साथ मनाएँ। जन्माष्टमी पर्व मनाने का तात्पर्य है कि श्रीकृष्ण के आदर्श गुणों का चिन्तन हो। इस प्रकार नहीं कि श्रीकृष्ण का स्वांग बनाकर उसके साथ गोपियाँ बिठाकर उन्हें नचाएँ। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित आदर्श गुणों के ऊपर बच्चों के भाषण कराएँ। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए जो कर्तव्य का मार्ग बताया है उस मार्ग पर चलने का प्रयास करें। रासलीला रचाकर, श्रीकृष्ण का स्वांग बनाकर गोपियों के साथ नचाकर उनके उज्ज्वल और निष्पाप जीवन के साथ अन्याय ही किया है। इसलिए हम सब का कर्तव्य बनता है कि श्रीकृष्ण का जो जीवन महाभारत के नीतिवेत्ता के रूप में, आदर्श गुणी के रूप में, योगी और तपस्वी के रूप में वर्णित किया है उसी रूप में हम उस महापुरुष का गुणगान करें।

ग्रहण करें। देश की एकता को सुदृढ़ करते हुए सत्ता से दूर रहना श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्र एवं व्यक्तित्व से सीखना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण जीवन धर्म की स्थापना और अधर्म के नाश में लगा दिया। वे स्वयं राजा नहीं बने परन्तु अखण्ड राष्ट्र के निर्माण में हमेशा धर्म के पक्षधर रहे, कभी भी अन्याय का साथ नहीं दिया। भरी सभा में दुर्योधन को फटकार लगाई और पाण्डवों के साथ सन्धि करने का परामर्श दिया। श्रीकृष्ण जनमाष्टमी का पर्व मनाते हुए हम श्रीकृष्ण के उत्कृष्ट गुणों का अपने जीवन में आधान करें। श्रीकृष्ण के आदर्शों को अपने जीवन में धारण करें और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता के लिए अपना जीवन समर्पित करें।

पृष्ठ 3 का शेष-महाभारत और श्रीकृष्ण

कोई मनुष्य संसार का महत्तम नेता बन सकता है, यह कृष्ण का चरित्र देखने से स्वतः ही विदित हो जाता है। श्रीकृष्ण अपने इन्हीं गुणों के कारण आज भी कोटि-कोटि मानवों की श्रद्धा और निष्ठा के पात्र ही नहीं प्रेरणास्रोत भी बने हुए हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण जी महाराज ऐसे ही महापुरुष थे। विकट परिस्थितियों के आने पर प्रत्येक व्यक्ति उस परिस्थिति से निकलने के लिए जूझना चाहता है परन्तु स्वार्थ एवं भीरुता के कारण जूझ नहीं पाता। उस समय कोई महापुरुष होता है जो सबकी पीड़ा को अपने हृदय में खींच कर परिस्थिति की विषमता से लड़ने के लिए उठ खड़ा होता है। जब कोई ऐसा महापुरुष सामने आता है तब सभी के सिर उसके सामने श्रद्धा से झुक जाते हैं। महामानव श्रीकृष्ण ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने सबकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझ लिया था। ऐसे महापुरुष को संसार ने समझने में बड़ी भूल की है। आज श्रीकृष्ण के ऐसे स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिससे श्रीकृष्ण के सभी आदर्श गुणों का लोप हो जाता है।

जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए आज हमें विचार करना होगा कि हमें किस प्रकार के श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। महाभारत के आदर्श नीतिवेत्ता, परम तपस्वी, तेजस्वी, संयमी श्रीकृष्ण की आवश्यकता अथवा पुराणों के चोर, कामी, रासलीला रचाने वाले, गोपियों के संग नाचने वाले भोगी श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। यदि हम अपने विवेक से ऐसा निर्णय कर सकें तो श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाना सार्थक एवं सफल हो सकेगा।

योगेश्वर श्रीकृष्ण—सामान्य परिचय

ले०—प्रो० रामविचार एम० ए०

योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म भारतवर्ष के प्रान्त उत्तरप्रदेश के नगर मथुरा में आज से ५०६८ (२००४) वर्ष पूर्व भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को हुआ था। उनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था। वे यादवकुल के वृष्णिवंश में उत्पन्न हुए। उन्होंने १२५ वर्ष की आयु प्राप्त की। श्री वसुदेव ने उनको मथुरा से गोकुल भेज दिया। वहाँ के ग्रामीण वातावरण में ही उनका पालन-पोषण हुआ। जब वे बड़े हुए तब श्रीवसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य से बलराम और श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। उन्हें गुरुकुल में शिक्षा के लिए भेजा गया। पुराणों में उनके गुरु सान्दीपनि को उनका आचार्य बताया गया है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार उन्होंने घोर आङ्गिरस से शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुकुल में रहकर उन्होंने धर्म, वैदिक साहित्य और राजनीति का अध्ययन किया।

श्रीकृष्ण ने जब कंस का वध कर दिया तब उसके श्वसुर जरासन्ध ने मथुरा पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। श्रीकृष्ण ने उसके आक्रमणों से बचने के लिए समुद्र के किनारे द्वारका को अपना निवासस्थान बनाया। वे जीवनभर वहीं रहे।

उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ—

उन्होंने कंस का वध करके अपने नाना उग्रसेन को राज्यसिंहासन पर बिठाया। जरासन्ध के बार-बार आक्रमणों से बचने के लिए द्वारका में स्थायी निवास बनाया। द्रौपदी स्वयंवर पर कलह शान्त करके अर्जुन को द्रौपदी दिलाई। रुक्मिणी से विवाह किया। अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कराया। खाण्डव वन का दहन कराया जरासन्ध का वध कराया और ८६ राजाओं से युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कराई। राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध किया। उन्होंने कौरवों और पाण्डवों में सन्धि का प्रयत्न किया। महाभारत युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन को समाप्त कराया। भारत को एकसूत्रता में बाँधकर युधिष्ठिर को सम्राट घोषित किया। यादवों के उद्दण्ड होने पर उनको समाप्त कराया। अन्त में वानप्रस्थाश्रम को धारण करके वन में रहने लगे और एक व्याध के बाण का शिकार बने।

उनका जीवन अद्भुत और अलौकिक गुणों से परिपूर्ण था।

अब उनके अलौकिक गुणों का वर्णन किया जा रहा है जिनके आधार पर उन्हें महापुरुष के पद पर आसीन किया जाता है।

साहस, वीरता एवं निर्भीकता

वे आरम्भ से ही साहसी, वीर एवं निर्भीक थे। उन के बाल्यकाल से ही उनमें ये गुण पाये जाते थे। इनकी बाल्यावस्था की सबसे महत्वपूर्ण घटना है—पूतना का वध। पूतना एक स्त्री थी, जिसके स्तनों में पस थी। जो बच्चा उसके स्तनों का पान करता था, मर जाता था। श्रीकृष्ण ने उसका स्तन मुँह में लेने के स्थान पर उसको दोनों हाथों से भींच दिया। इससे उसकी पस निकल गई। जब उन्होंने उसे मुँह में बलपूर्वक लेकर चूसा तो रक्त का स्राव बड़े वेग से आरम्भ हो गया। पूतना चीखें मार-मार कर वहीं मर गई। एक हिंसक जन्तु चील या गिद्ध था, उसे भी मारा। एक बड़ा बैल जिसका नाम अरिष्टि था, पागल हो गया। उसे मारा। केशी नाम का एक घोड़ा था, जिसे उन्होंने मारा था, इसलिए वे केशिसूदन कहलाये। कुछ जङ्गली गधे, जिन के मुखिया का नाम लोगों ने धेनुक रखा था, ग्वाल-बालों को ताड़ के वृक्षों का फल खाने से रोकता था, को अपने साहस से भगा दिया। वृन्दावन में कालिया नाग को मारा था। एक बार अपने पिता नन्द को डूबने से बचाया। उन्होंने साँप को मारा जिसने इनके पिता को पकड़ लिया था।

इन सब घटनाओं से पता चलता है कि वे बाल्यकाल से ही साहसी, वीर और निर्भीक थे।

कंस ने जब बलराम और कृष्ण की वीरता की घटनाएँ सुनीं तो उसे खटका हुआ। उसने अक्रूर को भेजा कि बलराम और कृष्ण को मथुरा में लाए। कंस ने उन पर कुवलयापीड़ हाथी को छोड़वाया। उन्होंने उस हाथी को मार डाला। फिर चाणूर और मुष्टिक दो पहलवानों को मार गिराया। इस के पश्चात् कृष्ण कूदकर कंस के सिंहासन तक पहुँचे। उसके केश पकड़कर उसे भूमि पर गिरा दिया और मार डाला।

कालयवन से लड़ने के लिए अकेले ही मथुरा से निकलना भी उनकी वीरता का सूचक है।

रुक्मिणी-हरण के अवसर पर राजाओं को रोकना और

रुक्मिणी को लेकर द्वारका आना उनकी वीरता को प्रकट करता है।

शाल्व का सोभ विमान तोड़ गिराना और शाल्व पर शस्त्र फेंककर उसे नष्ट करना उनकी वीरता का प्रतीक है।

भीम और अर्जुन के साथ जरासन्ध की राजधानी को उसे मारने के लिए जाना उनकी निर्भीकता का सूचक है।

राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध करना और किसी भी राजा का उनके विरुद्ध न बोलना उनकी वीरता और निर्भीकता का उदाहरण है।

कौरव सभा में सन्धिविषयक भाषण भी उनकी निर्भीकता को सूचित करता है।

महाभारत के युद्ध में वे लड़े तो नहीं, परन्तु युद्ध में सम्मिलित होना ही उनकी वीरता को सूचित करता है।

जनसेवा एवं नेतृत्व

एक बार वृन्दावन में बहुत वर्षा हुई। वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण के पास इस समस्या के समाधान के लिए उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण ने समस्या का यही समाधान सोचा कि उन्हें गोवर्धन पर्वत पर ले-जाया जाए, उन्होंने यही किया। उन सबको लेकर वहाँ चले गये। पर्वत की खुदाई कराई गई। वृक्ष गिराये गये। साँप, बिच्छू, चीता आदि जन्तुओं से वन को खाली किया गया। सारी बस्ती को गायों के गल्लों समेत वहीं आवास करा दिया गया। सात दिन तक लगातार वर्षा होती रही, श्रीकृष्ण रात-दिन वहीं डटे रहे। यही उनका गोवर्धन पर्वत को धारण करना था।

एक बार गोकुल में भेड़िये आ घुसे। उनसे ग्वालों को बहुत कष्ट होता था। उन्होंने उनसे गोकुल छुड़वा दिया और उन्हें वृन्दावन में जा बसाया।

इन कार्यों ने उनको जन-नेता बना दिया।

नीतिमत्ता

वे नीतिनिपुण थे। नीति का अर्थ होता है-कोई कार्य ठीक ढंग से पूरा करने के लिए की जाने वाली युक्ति या उपाय। वे नीतिमान् और नीति-कुशल थे। किसी कार्य को किस कुशल ढंग से किया जाए, इस कला में वे निपुण थे। जब एकाएक कोई स्थिति उत्पन्न हो जाए तब वे उसका तुरन्त समाधान ढूँढने में कुशल थे। उनके इस गुण का पता निम्नलिखित कई उदाहरणों से ज्ञात होता है।

द्रौपदी स्वयंवर के समय जब सब राजे-महाराजें द्रुपद की शर्त को पूरा करने में विफल हो गये तो ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन ने शर्त पूरी कर दी और द्रौपदी ने अर्जुन का वरण कर लिया उस

समय राजाओं ने बड़ा विरोध किया और लड़ाई-झगड़े की स्थिति आ गई तब श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं को समझाया कि जिसने द्रौपदी को जीता है, द्रौपदी उसे ही मिलेगी। व्यर्थ का झगड़ा करने का क्या लाभ? वास्तव में श्रीकृष्ण ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन और भीम को पहचान गये थे जबकि दूसरे राजा उन्हें पहचान नहीं सके। श्रीकृष्ण का प्रभाव इतना था कि उनके समझाने पर सब राजा शान्त हो गये।

एवं ते निवृत्तास्तु युद्धाद् युद्धविशारदाः।

यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः॥

महा० आदिपर्व १८९।३९

इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने से वे सभी युद्ध-कुशल श्रेष्ठ भूपाल युद्ध से निवृत्त हो गये और विस्मित होकर अपने-अपने डेरों को चले गये।

जब श्रीकृष्ण ने अनुभव किया कि अर्जुन की आसक्ति उनकी बहिन सुभद्रा की ओर हो गई है। तब उन्होंने अर्जुन को कहा कि स्वयंवर में क्या स्थिति बने, क्या न बने, तुम सुभद्रा का हरण कर लो। ऐसा ही हुआ। ऐसा होने पर सात्वतवंशी यादव बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने कहना आरम्भ किया कि अर्जुन ने हमारा घोर अपमान किया है। इस पर श्रीकृष्ण ने नीतिमत्ता का परिचय देते हुए कहा-“निद्राजित अर्जुन ने इस कुल का अपमान नहीं किया है, अपितु ऐसा करके उन्होंने इस कुल के प्रति अधिक सम्मान का भाव ही प्रकट किया है, इसमें संशय नहीं है। अर्जुन जानता है कि सात्वतवंशी कभी धन के लोभी नहीं रहे, अतः धन देकर कन्या नहीं ली जा सकती। साथ ही पाण्डुपुत्र अर्जुन को यह भी ज्ञात है कि स्वयंवर में कन्या के मिल जाने का पूर्ण निश्चय नहीं रहता, अतः वह भी ग्राह्य नहीं है। ऐसा कौन-सा वीर पुरुष है जो पशु के समान कन्या की प्रतीक्षा करे और ऐसा कौन पतित व्यक्ति है जो धन लेकर अपनी सन्तान को बेचे। इन्हीं दो बातों पर विचार करके उसने सुभद्रा का अपहरण किया है। सुभद्रा यशस्विनी है और अर्जुन भी पराक्रमी और यशस्वी है। फिर वे कहने लगे-

तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनञ्जयम्।

न्यवर्तयत संहृष्टा ममैषा परमा मतिः॥

महा० आदि० २२०।१०

अतः आप लोग प्रसन्नतापूर्वक दौड़ जाइए और सान्त्वना प्रदान कर अर्जुन को लौटा लाइए। मेरी तो यही परम सम्मति है।

जब महाराज युधिष्ठिर के मन में सम्राट् बनने के निमित्त

राजसूय का विचार आया तब उन्होंने सोचा कि इस विषय में श्रीकृष्ण जी-जैसे नीतिनिपुण व्यक्ति से परामर्श किया जाए। श्रीकृष्ण जी ने द्वारका से आकर इस पर यह सम्मति दी कि जब तक मगध के राजा जरासन्ध को न मारो तब तक राजसूय यज्ञ के अधिकारी नहीं हो सकते। उसने ८६ राजाओं को अपनी कैद में रखा हुआ है, १४ को और कैद करना चाहता है। इसके पश्चात् वह उन १०० राजाओं की बलि देना चाहता है। जब तक आप उन्हें बन्धन से न छुड़ाएँ तब तक आप राजसूय यज्ञ करके सम्राट् बनने के अधिकारी नहीं हो सकते।

न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले।

राजसूयस्त्वया वाप्तुमेषा राजन् मतिर्मम॥

महा० सभापर्व १४।६२

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर युधिष्ठिर तो हतोत्साहित हो गये और उन्होंने राजसूय यज्ञ का विचार त्याग देने की बात कही, क्योंकि जरासन्ध-जैसे दुर्दान्त एवं क्रूर राजा को वश में करना सिंह के मुँह में हाथ देने के तुल्य था, परन्तु श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम ने अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

जरासन्ध के पास अपार सशक्त सेना थी। उसको सेना द्वारा जीतना तो असम्भव था। यहाँ श्रीकृष्ण ने कुशल नीतिमत्ता का परिचय दिया। इस सन्दर्भ में अब जितनी भी घटनाएँ आएँगी, वे सब उनकी नीतिमत्ता को प्रदर्शित करती हैं।

उन्होंने मल्लयुद्ध के द्वारा जरासन्ध को मारने का निश्चय किया। वे भीम और अर्जुन को लेकर मगध की ओर चले। वे मगध की राजधानी गिरिव्रज तक पहुँच गये। वे नगर में मुख्य द्वार से प्रविष्ट नहीं हुए। उन्होंने चैत्यक नामक विशाल शिखर को तोड़कर नगर में प्रवेश किया। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धारण किया। एक माली से मालाएँ छीनकर धारण कीं। वे राजा जरासन्ध के महल तक जा पहुँचे और नरश्रेष्ठों से भरी तीन ड्यौढ़ियों को पार करके राजा जरासन्ध तक पहुँच गये। राजा ने उनका सत्कार किया। तब श्रीकृष्ण ने कहा-“ये दोनों मौन व्रतधारी हैं, अतः आधी रात को बोलेंगे।” जरासन्ध उन्हें यज्ञशाला में ठहराकर राजमहल को चला गया। जब वह आधी रात को आया तो उसने शङ्काएँ प्रकट कीं और पूछा, “आप किस प्रयोजन से यहाँ पधारे हैं?” शङ्काओं का निवारण करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा-“शत्रु मुख्य द्वार से नहीं आया करते। फूलमालाओं को धारण करना सौभाग्य का चिह्न है। स्नातक ब्राह्मण भी हो सकता है और क्षत्रिय भी। मैं वसुदेव का पुत्र कृष्ण हूँ और ये पाण्डु के पुत्र भीम और अर्जुन हैं। आप हमारे

शत्रु हैं, अतः शत्रु से पूजा ग्रहण नहीं करते।” जरासन्ध द्वारा शत्रुता का कारण पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा-“तुमने ८६ राजाओं को कैद कर रखा है और सौ की संख्या होने पर उनकी बलि देने का विचार बना रखा है-यही हमारी आपकी शत्रुता का कारण है।” इस वाद-विवाद में जरासन्ध कहने लगा-“अपनी सेना से लड़ लें अथवा तुम तीनों से एक-साथ अथवा तीनों से एक-एक करके युद्ध कर सकता हूँ।”

नीतिनिपुण कृष्ण ने इस बात का लाभ उठाकर जरासन्ध के साथ भीम का मल्लयुद्ध निश्चित किया। १३ दिन तक मल्लयुद्ध होता रहा। अन्त में भीमसेन ने उसे मार डाला। उसे मारकर वे बन्दीगृह की ओर गये और बन्दी राजाओं को कारावास से मुक्त कराया। वे राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली। उन्होंने राजसूययज्ञ में सम्मिलित होने का वचन दिया।

उपर्युक्त सारी घटनाएँ श्रीकृष्ण जी की नीतिनिपुणता का परिचय देती हैं।

उन्होंने महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का साथ दिया, परन्तु शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की।

अयुध्यमानः सङ्ग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः।

उद्योगपर्व ७।१९

महाभारत युद्ध में यादव भी दो भागों में बँटे हुए थे। कुछ दुर्योधन के साथ थे, कुछ पाण्डवों के साथ। श्रीकृष्ण ने यही समझा कि इस विषय में सबको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए। उन्होंने अपने लिए भी इसी स्वतन्त्रता का प्रयोग किया कि रहेंगे वे पाण्डवों की ओर, परन्तु निःशस्त्र। उन्होंने इस नीति से साम्राज्य को भी बचा लिया और यादव संघ को भी हाथ से न जाने दिया। इस निर्णय में यह नीति काम कर रही थी।

दुर्योधन की राजसभा में जाने से पूर्व श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाया कि दुर्योधन यदि हमारी बात न माने तो तुम्हें युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए।

न चैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते।

आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत्॥

महा० उद्योग० ७३।३

महाराज ! भिक्षा माँगना क्षत्रिय का नैष्ठिक-स्वाभाविक कर्म नहीं है।

वे जब पाण्डवों के दूत बनकर गये तो दुर्योधन ने उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया। वास्तव में दुर्योधन उन्हें पकड़कर कारावास में डालना चाहता था। उन्हें इस बात का पता चल

चुका था। उन्होंने भोजन के निमन्त्रण को ठुकरा दिया।

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।

न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

महा० उद्योगपर्व ११२५

किसी के घर अन्न या तो प्रेम के कारण खाया जाता है अथवा विपत्ति में पड़ने पर। राजन् ! प्रेम तो तुम में नहीं है और किसी आपत्ति में हम पड़े नहीं हैं। उन्होंने भोजन को ठुकरा कर नीतिमत्ता का परिचय दिया।

श्रीकृष्ण नीतिनिष्णात थे। वे साम, दाम, दण्ड और भेद-चारों नीतियों के मर्मज्ञ थे। उन्होंने भेद-नीति का प्रयोग करके कर्ण को दुर्योधन से अलग करना चाहा। उन्होंने कर्ण को समझाया कि तुम शास्त्रज्ञ हो। तुम वैदिक सिद्धान्तों के जानने वाले हो। तुम कुन्ती के कानीन पुत्र हो। तुम पाण्डवों में ज्येष्ठ हो। तुम सम्राट् बनोगे। युधिष्ठिर युवराज होंगे। ये बातें सुनकर कर्ण ने कहा, “केशव ! तुमने जो बातें कही हैं वे सब ठीक हैं। मुझे कुन्ती ने त्याग दिया। राधा और अधिरथ ने मुझे पाला। अब मैं उन्हें कैसे छोड़ूँ ? दुर्योधन ने मुझे सम्मान दिया। मैंने दुर्योधन का सहारा पाकर तेरह वर्ष तक निष्कण्टक राज्य किया है। अब दुर्योधन के साथ मित्रद्रोह कैसे करूँ ? कर्ण ने श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

जब श्रीकृष्ण ने देखा कि अर्जुन भीष्म पितामह के साथ मनोयोग से नहीं लड़ रहा है। तब उन्होंने नीति से काम लिया। वे घोड़ों की लगाम छोड़कर और हाथ में छुरे के समान तीक्ष्ण किनारे वाले चक्र को लेकर रथ से कूद पड़े और अपने पैरों की धमक से पृथिवी को कँपाते हुए बड़े वेग से भीष्म जी की ओर दौड़े। यह देखकर अर्जुन भी रथ से कूदकर श्रीकृष्ण की ओर भागा। उन्हें पकड़कर कहा-“आप अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग न करें। मैं मनोयोग के साथ भीष्म से लड़ूँगा।”

अर्जुन ने अभिमन्यु के घातक जयद्रथ को सूर्यास्त से पूर्व ही मारने की प्रतिज्ञा कर ली। दुर्योधन ने जयद्रथ को सेना के अन्त में जाकर खड़ा किया ताकि अर्जुन वहाँ तक पहुँच ही न सके। अर्जुन ने अभिमन्यु-वध का समाचार सुनते ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि सूर्यास्त से पहले यदि उसने जयद्रथ को न मारा तो वह अग्नि में जलकर मर जाएगा। श्रीकृष्ण के सम्मुख यह समस्या खड़ी हो गई कि क्या किया जाए ? दुर्योधन की सेना को चीरते हुए वे जयद्रथ तक पहुँचे। जयद्रथ जब अकेला सूर्य की ओर देख रहा था। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सङ्केत किया कि वह अकेला खड़ा है, अब उसे मारने का उपयुक्त समय है।

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः।

शिरः सिन्धुपतेशिञ्चत्वा ह्युत्पपात विहायसम्॥

महा० द्रोणपर्व १४६।१२२

गाण्डीव धनुष से छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण सिन्धुराज का सिर काटकर बाजपक्षी के समान उसे आकाश में ले-उड़ा। यह घटना भी कृष्णनीति की द्योतक है।

जब दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति नियुक्त किया तब श्रीकृष्ण ने घटोत्कच को लड़ने के लिए भेजा। श्रीकृष्ण जानते थे कि कर्ण के पास एक ऐसा शस्त्र है। जिसे उसने अर्जुन को मारने के लिए सुरक्षित रखा था। उसी का प्रयोग उसने घटोत्कच पर किया जिससे घटोत्कच की मृत्यु हो गई। इससे पाण्डव तो शोकसागर में डूब गये, परन्तु श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न थे। यह बात भीम को अच्छी नहीं लगी। तब श्रीकृष्ण ने भीम को समझाया कि अर्जुन बच गया है, इसलिए वे प्रसन्न हैं।

जब युधिष्ठिर कर्ण के बाणों से आहत होकर शिविर में लौट आये तब अर्जुन युधिष्ठिर का कुशल-क्षेम पूछने आये। युधिष्ठिर क्रोध में भरे बैठे थे। उन्होंने अर्जुन को बहुत जली-कटी सुनाई और गाण्डीव धनुष को धिक्कार कह दिया। अर्जुन ने शपथ खा रखी थी कि जो उसके धनुष को धिक्कारेगा वह उसको मार डालेगा। वह युधिष्ठिर को जान से मारने पर उतारू हो गया। श्रीकृष्ण के लिए एक नई समस्या खड़ी हो गई। श्रीकृष्ण ने समझाया कि तुम उनका जीभर कर अपमान कर दो। तुम सदा उसे आप कहते आये हो। अब उन्हें तू कह दो। बड़े व्यक्तियों का अपमान ही उनकी हत्या के समान है।

त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।

त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत॥

कर्णपर्व ६९।८३

इस प्रकार श्रीकृष्ण की बुद्धिमत्ता से यह सङ्कट टल गया। कर्ण के साथ अर्जुन का युद्ध हो रहा था। कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया। कर्ण ने अर्जुन को कहा, “मैं अपना रथ भूमि से निकाल लूँ, फिर मुझसे युद्ध करना। रथारूढ़ व्यक्ति का भूमि पर खड़े हुए पर बाण छोड़ना क्षत्रिय का धर्म नहीं है।” तब श्रीकृष्ण ने उपयुक्त अवसर जानकर नीतिमत्ता का परिचय देते हुए कहा था-

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानायेस्त्वं च सुयोधनश्च।

दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते प्रत्यभातत्र धर्मः॥

महा० कर्णपर्व ११।२

“कर्ण ! जब तुमने दुर्योधन, दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनि

ने एक वस्त्र धारण करने वाली रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलाया था, उस समय तुम्हारे मन में धर्म का विचार नहीं आया था ?

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम्।

अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।३

जब कौरव-सभा में जुए के खेल से अनभिज्ञ राजा युधिष्ठिर को शकुनि ने जान बूझ कर छलपूर्वक हराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे।

न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।४

कर्ण ! वनवास का तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो जाने पर जब तुमने पाण्डवों का राज्य उन्हें वापस नहीं किया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ?

यद् भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः।

आचरत् त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।५

जब राजा दुर्योधन ने तुम्हारी सम्मति से भीमसेन को विषयुक्त अन्न खिलाया और उसे सर्पों से डँसबाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

यद् वारणावते पार्थान् सुप्ताञ्जतुगृहे तदा।

आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।६

राधानन्दन ! उन दिनों वारणावत नगर में लाक्षाभवन के भीतर सोये हुए कुन्ती पुत्रों को जब तुमने जलाने का प्रयत्न किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम्।

सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।७

कर्ण ! भरी सभा में दुःशासन के वश में पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदी को लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान्।

यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।१०

कर्ण ! राज्य के लोभ में पड़कर तुमने शकुनि की सम्मति के अनुसार जब पाण्डवों को दुबारा जुए के लिए बुलवाया था, तब

तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।

परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

कर्णपर्व ११।११

जब युद्ध में तुम बहुत-से महारथियों ने मिलकर बालक अभिमन्यु को चारों ओर से घेरकर मार डाला उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?

इस पर अर्जुन ने बाणों की वर्षा करते हुए कर्ण को मार डाला।

युधिष्ठिर को शल्य से लड़वाने के पीछे भी श्रीकृष्ण की नीति काम कर रही थी।

युधिष्ठिर और अर्जुन के परस्पर वाग्युद्ध में अर्जुन के मुँह से बड़े भाई के लिए तिरस्कारपूर्ण शब्द सुनकर श्रीकृष्ण को एक चिन्ता सताने लगी कि जिसे सम्राट बनना है उसे पराक्रम दिखाने का तो कोई अवसर ही नहीं मिला। वह दूसरे भाइयों के सहारे राज्य प्राप्त करे, यह भी उचित नहीं है, इसीलिए उन्होंने युधिष्ठिर को शल्य से लड़ने के लिए प्रेरित किया।

सदेव लोके कृत्स्नेऽस्मिन्नान्यस्त्वत्तः पुमान्भवेत्।

मद्राजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात् कुरुनन्दन॥

शल्यपर्व ७।३४

कुरुनन्दन युधिष्ठिर ! देवताओं सहित इस सम्पूर्ण संसार में आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो रण में कुपित हुए मद्राज शल्य को मार सके।

जब दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध होते हुए हार और जीत का कोई निर्णय नहीं हो रहा था तब श्रीकृष्ण ने अपनी बाईं जाँघ को ठोंककर भीम को उसकी प्रतिज्ञा स्मरण कराई। जब दुर्योधन ने भरे दरबार में द्रौपदी को अपनी जाँघ पर बैठने का सङ्केत किया था तब भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि वह गदायुद्ध में उसकी जाँघ तोड़ेगा। बाईं जाँघ का सङ्केत पाते ही-

धनञ्जयस्तु श्रुत्वैतत् केशवस्य महात्मनः।

प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत्॥

शल्य पर्व ५८।२१

अर्जुन ने महात्मा केशव का वचन सुनकर भीमसेन के देखते हुए अपनी बाईं जाँघ को ठोका।

जब भीम ने दुर्योधन की बाईं जाँघ को गदा के प्रहार से तोड़ डाला तब श्रीकृष्ण के भाई बलराम ने इसे गदायुद्ध के धर्म के विपरीत बताकर शोर मचाया तब श्रीकृष्ण ने बलराम को समझाया-

इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमसेनेन सभातले।

अतो दोषं न पश्यामि मा कुब्जस्व प्रलम्बहन्॥

शल्य पर्व ६०।१७, १९

पहले सभा में भीमसेन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन की जाँघ तोड़ूँगा, इसलिए प्रलम्ब (राक्षस) के हन्ता ! मैं इसमें भीमसेन का कोई दोष नहीं देखता हूँ।

अर्जुन जब यज्ञीय घोड़े के साथ द्वारका पहुँचा तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर को सन्देश भिजवाया। इस बार अर्घ्य की व्यवस्था न की जाए ताकि राजसूय यज्ञ का दृश्य उपस्थित न हो।

कर्तुमर्हति तद्राजा भवांश्चाप्यनुमन्यताम्।

राजद्वेषान्न नश्येयुरिमाः राजन् पुनः प्रजाः॥

आश्व० ८६।१७

सब राजाओं का आदरपूर्वक सत्कार किया जाए ताकि राजाओं के द्वेष के कारण प्रजा पुनः नष्ट न हों।

जब दुर्योधन मारा गया तब श्रीकृष्ण पाण्डवों समेत धृतराष्ट्र से शोक-संवेदना प्रकट करने के लिए उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण नीतिमत्ता के कारण जानते थे कि धृतराष्ट्र को सबसे अधिक क्षोभ होगा तो भीमसेन पर। उन्होंने दूरदर्शिता का परिचय देकर पहले ही भीमसेन पर। उन्होंने दूरदर्शिता का परिचय देकर पहले ही भीमसेन की प्रतीक एक लोह-प्रतिमा बनवा रखी थी। जब मिलने का समय आया तो धृतराष्ट्र ने सबसे पहले युधिष्ठिर से आलिङ्गन किया, परन्तु उसका मन प्रसन्न नहीं था। फिर उसने भीम से मिलने की इच्छा प्रकट की। तब श्रीकृष्ण ने भीम को परे हटाकर लोहे की एक प्रतिमा आगे कर दी। धृतराष्ट्र ने क्रोधावेश में आकर बाँहों से दबाकर उसे तोड़ डाला और 'हा भीम' ! 'हा भीम !' कहते हुए विलाप करने लगा। तब श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा-

मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः।

आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निपातिता विभो॥

स्त्रीपर्व १२।२३

हे धृतराष्ट्र ! आप शोक न करें। ये भीम आपके हाथ से नहीं मारा गया है। यह तो लोहे की प्रतिमा थी, जिसे आपने चकनाचूर किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपनी बुद्धिमत्ता से भीम की रक्षा की।

वे युद्ध के पक्षधर नहीं थे

वे नहीं चाहते थे कि युद्ध हो। इसके लिए उन्होंने प्रयत्न किये। पहले उलूक को दूत बनाकर भेजा गया। फिर वे स्वयं पाण्डवों के दूत बनकर गए। उन्होंने धृतराष्ट्र के दरबार में

जाकर जो भाषण दिया वह इस प्रकार है-

“हे भरतनन्दन (धृतराष्ट्र) ! क्षत्रियवीरों का संहार हुए बिना ही कौरव और पाण्डवों में शान्ति स्थापित हो जाए, मैं यह चाहता हूँ। मुझे इसके अतिरिक्त और कोई कल्याणकारक बात आपसे नहीं कहनी है, क्योंकि जानने योग्य जितनी बातें हैं, वे सब आपको विदित हैं। इस समय समस्त राजाओं में यह कुरुवंश ही सर्वश्रेष्ठ है। इस में शास्त्र एवं सदाचार का पूर्णरूप से पालन किया जाता है। यह कौरवकुल सम्पूर्ण सद्गुणों से सम्पन्न है। कुरुवंशियों में कृपा, अनुकम्पा, करुणा, अनृशंसता, सरलता, क्षमा और सत्य-ये सद्गुण अन्य राजवंशों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं। ऐसे उत्तम गुण-सम्पन्न तथा अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल के होते हुए भी यदि इसमें आपके कारण कोई खोटा कार्य हो तो यह अनुचित है। नरेश ! दुर्योधन आदि आपके पुत्र धर्म और अर्थ का परित्याग करके क्रूर मनुष्यों के समान आचरण कर रहे हैं। ये अपनी ही श्रेष्ठ बन्धुओं के साथ अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं। लोभ ने इनके हृदयों को ऐसा अभिभूत कर लिया है कि इन्होंने धर्म की सब मर्यादाएँ तोड़ दी हैं। इस बात को आप भली-भाँति जानते हैं। कुरुश्रेष्ठ ! इस समय यह भयङ्कर आपत्ति कौरवों में ही प्रकट हुई है। यदि इसकी उपेक्षा की गई तो यह सारे भूमण्डल को नष्ट कर डालेगी। हे भारत ! यदि आप चाहें तो यह भीषण सङ्कट अब भी टाला जा सकता है। भरतश्रेष्ठ ! मैं इन दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित होना मैं कठिन कार्य नहीं मानता हूँ।

त्वय्यधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते।

पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान्॥

उद्योग १५।१३

राजन् इस समय इन दोनों पक्षों में सन्धि कराना आपके और मेरे अधीन है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रखिए और मैं पाण्डवों को मर्यादा में रखूँगा। महाराज ! युद्ध छिड़ जाने पर तो महाविनाश ही दिखाई देता है। राजन् ! दोनों पक्षों का विनाश कराने में आप कौन-सा धर्म देखते हैं। नृपश्रेष्ठ ! भूमण्डल के समस्त राजा यहाँ एकत्र हो अमर्ष में भरकर इन प्रजाओं का नाश कर डालेंगे। राजन् ! ये सभी नरेश शुद्ध, उदार, लज्जाशील, श्रेष्ठ, पवित्रकुलों में उत्पन्न तथा एक दूसरे के सहायक हैं। आप इन सबकी महान् भय से रक्षा कीजिए। आप ऐसा प्रयत्न कीजिए, जिससे ये सभी भूपाल परस्पर मिलकर तथा एक साथ खा-पीकर सकुशल अपने-अपने घरों को लौट जाएँ।

अब आपकी आयु भी क्षीण हो चली है। इस वृद्धावस्था में

आपका पाण्डवों पर वैसा ही स्नेह बना रहे, जैसा पहले था, अतः सन्धि कर लीजिए। पाण्डव बाल्यावस्था में ही पिता से विहीन हो गये थे। उस समय आपने ही उन का पालन-पोषण किया, अतः अब भी आप ही उनका और अपने पुत्रों का न्यायपूर्वक पालन कीजिए।

राजन् ! पाण्डवों ने आपको प्रणाम करके प्रसन्न करते हुए यह सन्देश कहलाया है—“तात ! आपकी आज्ञा से अनुचरों सहित हमने भीषण कष्ट सहन किया है। बारह वर्ष तक हमने निर्जन वनों में निवास किया है और तेरहवाँ वर्ष जन-समुदाय से भरे हुए नगर में अज्ञात रहकर व्यतीत किया है। आप हमारे पितृ-समान हैं, अतः हमारे विषय में की हुई अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहेंगे। वनवास से लौटने पर हमारा राज्य लौटा देंगे। ऐसा निश्चय करके ही हमने वनवास और अज्ञातवास की शर्त को कभी नहीं तोड़ा। हम अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे हैं, आप भी हमारे साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहें। राजन् ! हमने सदा क्लेश उठाया है। अब हमें हमारा राज्य-भाग प्राप्त हो जाना चाहिए।”

भरतकुलतिलक ! आपके पुत्र पाण्डवों ने इस सभा के लिए यह सन्देश दिया है—“आप समस्त सभासद्गण धर्म के ज्ञाता हैं। आपके रहते हुए यहाँ कोई अयोग्य कार्य हो, यह उचित नहीं है। जहाँ सभासदों के देखते-देखते अधर्म के द्वारा धर्म का और असत्य द्वारा सत्य का हनन होता है, वहाँ वे सभासद् नष्ट हुए माने जाते हैं। जिस सभा में अधर्म से विद्ध हुआ धर्म प्रवेश करता है और सभासद्गण उस अधर्मरूप काँटे को काटकर निकाल नहीं देते तो उस काँटे से सभासद् ही विद्ध होते हैं। जो पाण्डव सदा धर्म की ओर ही दृष्टि रखते हैं तथा उसी का विचार कर चुपचाप बैठे हैं, उनका आपसे राज्य लौटाने का अनुरोध सत्य, धर्मसम्मत और न्यायसङ्गत है। पाण्डवों को यथोचित पैतृक राज्यभाग देकर आप भी अपने पुत्रों के साथ सफलमनोरथ हो, मनोवाञ्छित फल भोगिए। मैं तो आप और पाण्डव दोनों का कल्याण चाहता हूँ। राजन् ! आप समस्त प्रजा को धर्म, अर्थ और सुख से वञ्चित मत कीजिए। इस समय आप अनर्थ को ही अर्थ तथा अर्थ को ही अपने लिए अनर्थ मान रहे हैं। भूपाल ! आपके पुत्र लोभ में अत्यन्त आसक्त हो गये हैं, उन्हें वश में कीजिए। राजन् ! शत्रुओं का दमन करने वाले कुन्तीपुत्र आपकी सेवा के लिए भी प्रस्तुत हैं तथा युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं। परन्तप ! इसमें जो आपके लिए हितकर जान पड़े, उसी मार्ग का अवलम्बन कीजिए।

धृतराष्ट्र और सभासदों को इतना कहकर श्रीकृष्ण दुर्योधन की ओर घूमकर मधुरवाणी में उससे बोले—

कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन ! तुम मेरी यह बात सुनो। हे भारत ! मैं विशेषतः सगे-सम्बन्धियों सहित तुम्हारे कल्याण के लिए तुम्हें कुछ परामर्श दे रहा हूँ। तुम महाबुद्धिमान् पुरुषों के कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम स्वयं भी शास्त्रज्ञान और सुचरित्र से सम्पन्न हो। तुममें सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, अतः तुम्हें मेरा सत्य परामर्श मानना चाहिए। तुम ज्ञानी, परम उत्साही, शूरवीर, मनस्वी तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। तात ! मन्त्रियों सहित तुम्हारे पिता को पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना ही अच्छा जान पड़ता है। कुरुश्रेष्ठ ! यही तुम्हें भी पसन्द आना चाहिए। तुमने जन्म से ही कुन्ती के पुत्रों के साथ सदा शठतापूर्ण व्यवहार किया है, परन्तु वे कभी कुपित नहीं हुए, क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं। राजन् ! जो सद्व्यवहार करने वाले सत्पुरुषों के साथ दुर्व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ी से जङ्गल की भाँति उस दुर्व्यवहार से अपने-आपको ही काटता है। हे भारत ! तुम दुःशासन, दुर्विषह, कर्ण और शकुनि-इन सब पर अपने ऐश्वर्य का भार रखकर उन्नति की इच्छा रखते हो ? भारत-नन्दन ! ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थ की प्राप्ति कराने में समर्थ नहीं हैं और पाण्डवों के साथ पराक्रम प्रकट करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं। तुम्हारे सहित ये समस्त भूपाल भी युद्ध में क्रुद्ध हुए भीमसेन के मुख की ओर आँख उठाकर देख सकने में भी असमर्थ हैं। भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्य—ये सब मिलकर भी अर्जुन का सामना करने में असमर्थ हैं। सम्पूर्ण देवता और असुर भी युद्ध में अर्जुन को जीत नहीं सकते। वे समस्त मनुष्य और गन्धर्वों द्वारा भी अजेय हैं, अतः युद्ध का विचार त्याग दो। दुर्योधन ! अपने इन पुत्रों, भाइयों, कुटुम्बी जनों तथा सगे-सम्बन्धियों की ओर तो देखो। ये श्रेष्ठ भरतवंशी तुम्हारे कारण नष्ट न हो जाएँ। राजन् ! कौरव कुल बचा रहे, इस कुल का पराभव न हो और तुम भी अपनी कीर्ति को नष्ट करके कुलघाती न कहलाओ। महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज के पद पर अभिषिक्त करेंगे और तुम्हारे पिता राजा धृतराष्ट्र को महाराज के पद पर बनाये रखेंगे। तात ! अपने घर में आने के लिए उद्यत राज्यलक्ष्मी का तिरस्कार मत करो। कुन्ती के पुत्रों को आधी राज्यलक्ष्मी (आधा राज्य) देकर स्वयं विशाल सम्पत्ति का उपभोग करो। पाण्डवों के साथ सन्धि करने तथा अपने हितैषी सुहृदों की बात मानकर मित्रों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए तुम चिरकाल तक कल्याण के भागी बने रहोगे।

दुर्योधन ! तुझे रणभूमि में वीरशय्या प्राप्त होगी। तेरी यह इच्छा पूर्ण होगी। तू मन्त्रियों सहित धैर्य धारण कर। शीघ्र ही महान् नरसंहार होने वाला है। मूढ़ तू जो यह मानता है कि मैंने पाण्डवों के प्रति कोई अपराध नहीं किया है, तो इस सम्बन्ध में मैं सब बातें बताता हूँ। भूपालो ! आप लोग भी ध्यान देकर सुनें।

हे भारत ! महात्मा पाण्डवों की बढ़ती हुई समृद्धि से सन्तप्त होकर तू ने ही शकुनि के साथ यह कुमन्त्रणा की थी कि पाण्डवों के साथ जुआ खेला जाए। तेरे सिवा कौन ऐसा नीच होगा जो अपने बड़े भाई की पत्नी को सभा में लाकर उसके साथ वैसा अभद्र व्यवहार करेगा जैसा कि तूने द्रौपदी के प्रति स्पष्टरूप से न कहने योग्य बातें कहकर किया था ? तूने वारणावत नगर में बाल्यावस्था में पाण्डवों को उनकी मातासहित जला डालने का भारी प्रयत्न किया था, परन्तु तेरा वह उद्देश्य सफल न हो सका। तू ने भीम को विष देकर, सर्प से कटवाकर तथा बँधे हुए हाथ-पैरों सहित जल में डुबाकर पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयत्न किया था, परन्तु तेरा यह प्रयास भी सफल न हो सका। ऐसे ही विचार रखकर तू पाण्डवों के प्रति सदा कपटपूर्ण बर्ताव करता आया है। फिर कैसे मान लिया जाए कि महात्मा पाण्डवों के प्रति तूने कोई अपराध नहीं किया ? पापी ! तू याचना करने पर भी पाण्डवों को जो पैतृक राज्य-भाग नहीं देना चाहता, वही तुझे उस समय देना पड़ेगा, जब युद्धभूमि में धराशायी होकर तू ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाएगा। माता-पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर सब ने तुझे बार-बार कहा है कि तू सन्धि कर ले-शान्त हो, परन्तु भूपाल ! तू शान्त होने का नाम ही नहीं लेता। राजन् ! शान्ति स्थापित होने पर तेरा और युधिष्ठिर-दोनों का ही महान् लाभ है, परन्तु तुझे यह प्रस्ताव अच्छा ही नहीं लगता। इसे बुद्धि की मन्दता के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? अन्त में श्रीकृष्ण जी ने कहा-

राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।

त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ॥

उद्योग० २८।५०

महाराज धृतराष्ट्र ! आप दुर्योधन को बन्दी बनाकर पाण्डवों से सन्धि कर लें। क्षत्रिय शिरोमणे ! ऐसा न हो कि आपके कारण समस्त क्षत्रियों का विनाश हो जाए।

कौरव-सभा में उनके भाषण से उनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और सत्य-प्रेम के दर्शन होते हैं। उन्होंने युद्ध को रोकने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु दुर्योधन के हठ के कारण वह रुक

नहीं पाया। यद्यपि भीष्म पितामह, और द्रोणाचार्य ने उसे सन्धि करने का परामर्श दिया, परन्तु उस ने उनकी एक न मानी।

धर्म और न्याय के पक्षधर

वे धर्म और न्याय के पक्षधर थे। उनके जीवन का लक्ष्य था-सज्जन पुरुषों की रक्षा और दुष्टों का विनाश। उन्होंने गीता में कहा है-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

गीता ४।८

मैं साधुपुरुषों की रक्षा के लिए और दुष्टकर्म करने वालों का नाश करने के लिए, धर्म-संस्थापन करने के लिए युग-युग में प्रकट होता हूँ।

पाण्डव धर्मपरायण थे, इसीलिए उन्होंने उनका साथ दिया और उनकी जीत कराई। कौरव-सभा में भी उन्होंने यह बात कही-

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।

हन्यते प्रेक्षमाणानां हतचास्तत्र सभासदः॥

उद्योग० १५।४८

जहाँ सभासदों के देखते-देखते अधर्म के द्वारा धर्म का और असत्य द्वारा सत्य का हनन होता है, वहाँ वे सभासद नष्ट हुए जाने जाते हैं।

धर्म के आधार पर साम्राज्य के संस्थापक

वे धर्म और न्याय के आधार पर साम्राज्य के संस्थापक थे। उन्हें कंस और जरासन्ध-जैसे निरंकुश और स्वेच्छाचारी राजाओं का राज्य अभीष्ट नहीं था। वे राजा को परम दैवत नहीं मानते थे। वे ऐसे राजाओं के पक्षधर थे जो न्यायप्रिय और धर्मपरायण हों। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि पाण्डव शक्तिशाली तो हैं, परन्तु अत्याचारी नहीं हैं। वे धर्म और न्याय के आधार पर राज्य चलाएँगे। उस राज्य में कोई अत्याचार नहीं होगा और सर्वत्र प्रीति और प्रेम का साम्राज्य होगा।

भारत की एकसूत्रता के पक्षधर

वे भारत को एक केन्द्र के अधीन देखना चाहते थे। अर्जुन जब घोड़े को लेकर निकला तब वह त्रिगर्त (जालन्धर) प्रागज्योतिष (असम), सिन्ध, मणिपुर, मगध, काशी, कोसल, अङ्ग, किरात, तङ्गण, दशार्ण, निषादराज आदि प्रदेशों में प्रविष्ट हुआ। उसने द्रविड़ों, आन्ध्रों, औड़ों, माहिष्कों और कोल्हगिरि आदि सबको अपने पक्ष में किया। सुराष्ट्र, द्वारावती, पञ्चनद आदि सभी प्रदेशों में विजय-पताका लहराता हुआ हस्तिनापुर

लौटा। समस्त भारत को एक सूत्रता में पिरोने का श्रेय श्रीकृष्ण को है।

प्रेरक व्यक्तित्व

महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर को सम्राट बनाने की बात चली तो युधिष्ठिर को फिर वैराग्य ने आ घेरा। वह फिर वन में जाने की बात कहने लगा। उसे भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने समझाया। द्रौपदी ने भी राज्य ग्रहण के लिए प्रेरित किया। मुनिवर देवस्थान और महर्षि व्यास ने भी समझाया। अन्त में श्रीकृष्ण ने समझाया-

मा कृथाः पुरुषव्याघ्र शोकं त्वं गात्रशोषणम्।

नहि ते सुलभा भूयो ये हतास्मिन् रणाजिरे॥

शान्ति० २९।८

हे पुरुषसिंह ! तुम शोक न करो। शोक तो शरीर को सुखा देता है। इस युद्ध में जो वीर मारे गये हैं। उनका पुनः मिल पाना सम्भव नहीं है।

हे राजेन्द्र ! तुम भी अपने हृदय में उत्पन्न हुए इस शोक को दूर कर पुण्यदायक महायज्ञों का अनुष्ठान करके अभीष्ट लोकों को प्राप्त करोगे।

शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या का समन्वय

उनके व्यक्तित्व में शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्या का समन्वय पाया जाता है। भीष्म पितामह ने उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें वेद-वेदाङ्ग का पण्डित बताया था।

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।

नृणां लोके हि को अन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

सभापर्व ३८।१९

जब दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को उपालम्भ देते हुए कहा कि यदि पाण्डव इसी प्रकार हमारी सेना को पराजित करते रहे तो हमारी हार होगी। इस पर द्रोणाचार्य ने कहा-"हम तुम्हारे हित का काम करने के लिए सदैव प्राण तक देने के लिए तैयार रहते हैं और पूरे यत्न से पाण्डवों का नाश करते हैं, परन्तु कृष्ण की चतुरता और अर्जुन के पराक्रम के सामने हमारा बस नहीं चलता। जो कुछ हम प्रयत्न करते हैं वह सब-का-सब व्यर्थ चला जाता है।"

जब कर्ण ने सर्वमुखबाण जिसे उसने वर्षों से सँभाल रखा था, अर्जुन पर छोड़ा तब उन्होंने युद्धस्थल में खेल-सा करते हुए अपने उत्तम रथ को पैर से दबाकर उसके पहियों का कुछ भाग भूमि में धँसा दिया। साथ ही सोने के आभूषणों से अलङ्कृत, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेतवर्ण वाले उनके

घोड़े भी धरती पर घुटने टेककर झुक गये। परिणामस्वरूप कर्ण का चलाया हुआ वह बाण रथ के नीचा हो जाने के कारण अर्जुन के किरीट में जा लगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण की चतुराई से अर्जुन की रक्षा हो सकी।

शूद्र को भारत का सम्राट बनाने के पक्षधर

वे वर्णव्यवस्था के पोषक थे। उन्होंने कर्ण को समझाया कि तुम कुन्ती के कानीन पुत्र हो। यदि तुम दुर्योधन का पक्ष छोड़कर पाण्डवों की ओर आ जाओ तो बड़े होने के नाते भारत के सम्राट बनोगे। युधिष्ठिर तुम्हारा युवराज होगा, परन्तु कर्ण नहीं माना।

सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।

निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि॥

उद्योगपर्व १४०।१९

कर्ण ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। यदि कर्ण श्रीकृष्ण की बात मान लेता तो कर्ण ही भारत का सम्राट बनता। यह कितना युगान्तकारी पग होगा ! भारतीय समाज में कितना परिवर्तन उपस्थित होता और श्रीकृष्ण को भी भारतीय समाज का बहुत विरोध सहन करना पड़ता।

दृढ़प्रतिज्ञ

वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने दुर्योधन की सभा में जाने से पहले द्रौपदी के सम्मुख जो प्रतिज्ञा की थी उसे निभाया। जब द्रौपदी ने रोकर और बायें हाथ में अपने केशों को लेकर अपने अपमान का बदला लेने की बात कही तब श्रीकृष्ण बोले-

चलेद्भि हिमावाञ्छैलो मेदिनी शतधा भवेत्।

द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत्॥

उद्योगपर्व ८२।४८

चाहे हिमालय पर्वत अपने स्थान से टल जाए, पृथिवी के सैकड़ों टुकड़े हो जाएँ और नक्षत्रोंसहित आकाश टूट पड़े, परन्तु मेरी यह बात असत्य नहीं हो सकती। इससे पूर्व उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी-

धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः।

शेष्यन्ते निहिता भूमौ श्वश्रृगालादनीकृताः॥

उद्योग० ८२।४७

यदि काल के गाल में जाने वाले धृतराष्ट्र-पुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो वे सब मारे जाकर पृथिवी पर सदा की नींद सो जाएँगे और कुत्तों तथा स्यारों का भोजन बनेंगे।

इससे पूर्व उन्होंने काम्यक वन में पाण्डवों को यथाशक्ति सहायता देने का वचन दिया था।

यस्समर्थं पाण्डवानां तत्कारिष्यामि मा शुचः।

सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि॥

वनपर्व १२।१२९, १३०

द्रौपदी को सम्बोधित करते हुए श्रीकृष्ण बोले, “बहिन ! पाण्डवों के हित के लिए जो कुछ भी सम्भव है, मैं वह सब करूँगा, तुम शोक मत करो। मैं सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि तुम राजरानी बनोगी।

संवेदनशीलता

उनके पास संवेदनशील हृदय भी था। वे जहां आततायी के लिए कठोर थे, वहाँ दया के पात्र के प्रति संवेदनशील भी थे। उन्होंने संवेदनशीलता प्रकट करते हुए धृतराष्ट्र के मुँह से निकलवा दिया कि माधव ! जो तुम कहते हो सब ठीक है। अपराध तो दुर्योधन का ही था।

एवमेतन् महाबाहो यथा वदसि माधव।

पुत्रस्नेहस्तु बलवान् धैर्यान्मां समाचलत्॥

स्त्रीपर्व १३।१३

महाबाहो ! माधव ! आप जैसा कह रहे हैं ठीक ऐसी ही बात है, परन्तु पुत्र का स्नेह प्रबल होता है, उसने मुझे धर्म से विचलित कर दिया था।

सहनशीलता

उनमें सहनशीलता का गुण भी विद्यमान था। वे राजसूय यज्ञ में शिशुपाल से कहने लगे कि मैं तुम्हारी सौ गालियाँ सहन कर लूँगा परन्तु इससे आगे जब तुम बढ़ोगे तो तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् कर दूँगा। उन्होंने ऐसा ही किया।

एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात्।

व्यापहरच्छिरः कुब्जश्चक्रेणामित्रकर्षणः।

सभापर्व ४५।२५

ऐसा कहकर कुपित हुए शत्रुनाशक यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण ने चक्र से उसी क्षण चेदिराज शिशुपाल का सिर उड़ा दिया।

निर्लोभता

उन्होंने कंस को मारा, परन्तु उसका राज्य अपने हाथ में नहीं लिया। अपने नाना उग्रसेन को राजा बनाया।

उग्रसेनः कृतो राजा भोजराज्यस्य वर्द्धनः।

उद्योग १२८।३९

जब जरासन्ध को मार दिया गया तब श्रीकृष्ण ने उसके बेटे सहदेव का राज्याभिषेक किया।

अभयधिञ्चत् तमेव जरासन्धात्मजं मुदा।

गतैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः॥

सभापर्व २४।४३

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध-पुत्र सहदेव को प्रसन्नापूर्वक वहीं पिता के राज्य पर अभिषेक कर उसे अपना अभिन्न सुहृद् बना लिया। भीम और अर्जुन ने भी उसका बड़ा सत्कार किया। चेदिनरेश शिशुपाल की हत्या की तो वहीं उसके बेटे का राज्याभिषेक कर दिया।

चेदीनामाधिपत्ये च पुत्रस्य महीपतेः।

अभयधिञ्चत् तदा पार्थः सह तैर्वसुधाधिपैः॥

सभा० ४५।३६

शिशुपाल के अन्त्येष्टि संस्कार के पश्चात् कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर ने वहाँ आये हुए सभी राजाओं के साथ चेदिदेश के राजसिंहासन पर शिशुपाल के पुत्र को अभिषिक्त कर दिया।

उन्होंने भौमासुर को मार कर उसके पुत्र भगदत्त को राज्य पर नियुक्त किया।

स्पष्टवादिता

उनकी स्पष्टवादिता का परिचय तब मिलता है। जब वे दुर्योधन के दरबार में जाकर उसे खरी-खरी सुनाते हैं।

उन्होंने भीष्म पितामह को युद्धभूमि में फटकारते हुए कहा- “यह युद्ध आपकी ही करतूत है। न आप घूट होने देते न ये बुरे दिन पृथ्वी पर आते और यदि दुर्योधन आपकी नहीं मानता था तो आपको उससे अलग हो जाना चाहिए था।” भीष्म ने कहा- “राजा परमदेवता है ; उसे छोड़ा नहीं जा सकता।” श्रीकृष्ण ने झट उत्तर दिया- “हमने कंस को छोड़ दिया था या नहीं।”

इसी प्रकार जब कर्ण ने धर्म की दुहाई दी तब उसे भी खरी-खरी सुनाई।

युधिष्ठिर ने गदायुद्ध में जो जीते उसी को राज्य मिलेगा की बात कही तो उसे भी फटकारा। जब दुर्योधन ने मरते समय कृष्ण पर लांछन लगाये तो उसे श्रीकृष्ण ने फिर खरी-खरी सुनाई।

दार्शनिक के रूप में

गीता में हमें उनके दार्शनिक रूप के दर्शन होते हैं। वे आत्मा को अमर मानते थे।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

गीता २।२०

आत्मा न कभी मरता है न जन्म लेता है और न होकर फिर होगा। यह अजन्मा, स्थिर और अनादि है। शरीर के मारे जाने

पर नहीं मरता।

उन्होंने आवागमन को इस रूपक द्वारा उपस्थित किया है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

गीता २।२२

जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर नये वस्त्र पहनता है
वैसे ही शरीरधारी पुराने शरीरों को छोड़कर नयों में प्रवेश करता
है।

अर्जुन क्षत्रिय था। क्षत्रिय वर्ण के अनुसार लड़ना उसका धर्म
था। इसी कर्तव्य का बोध उन्होंने अर्जुन को कराया।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

गीता २।४७

तेरा कर्म करने में अधिकार है, फलों में नहीं। तेरा कर्म
कर्मफल की प्राप्ति के निमित्त न हो। तेरा लगाव कर्म के त्याग
में भी न हो। जो कर्म को लाभ-हानि से ऊपर उठकर करता है
वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। उन्होंने अर्जुन को यह समझाया कि
लाभ हो चाहे हानि-तू इस विचार से ऊपर उठकर लड़ाई कर।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

गीता ३।८

तू अपने निर्धारित कर्म को कर। कर्म का करना कर्म के न
करने से अच्छा होता है। बिना कर्म किये तुझ से शरीर की यात्रा
भी सम्पन्न न होगी।

ज्ञानी के लिए भी कर्म की आवश्यकता है।

न मे पार्थस्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

गीता ३।२२

मेरे लिए संसार में कुछ भी करना शेष नहीं है। न प्राप्त हुआ
और प्राप्त करने योग्य भी कुछ नहीं फिर भी कर्म में लगा हुआ
हूँ। कर्मसंन्यास का साधन भी कर्म ही है।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः॥

गीता ४।२०

जो कर्मफल में आसक्ति को छोड़कर सदा प्रसन्न कामना के
आश्रय से रहित है। वह कर्म में सर्वथा लगा हुआ भी कुछ भी

नहीं करता है। सब यज्ञों में ज्ञानयज्ञ (निष्काम कर्मयोग) ही
श्रेष्ठ है। कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निरन चाक्रियः॥
गीता ६।१९

जो कर्मफल का आश्रय न लेता हुआ कर्त्तव्य-कर्म करता
है, वही संन्यासी और योगी है। अग्निहोत्र न करने वाला और
कर्म न करने वाला नहीं।

गीता का सार 'स्थितप्रज्ञ, समत्वयोगी और गुणातीत' इन
तीन शब्दों में समाया हुआ है। तीनों का एक ही सार है-सुख-
दुःख, लाभ-हानि, विजय-पराजय और मान-अपमान में समान
रहने वाला। समत्वयोगी की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा
है-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

गीता ६।३२

जो अपने समान सब जगह सुख वा दुःख को बराबर देखता
है। वह उत्तम योगी माना जाता है। गुणातीत के भी यह लक्षण
बताये गये हैं-

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

गीता १४।२४

सुख और दुःख में समान सँभला हुआ, ढेले, पत्थर और
स्वर्ण में समान भाववाला, प्रेम और शत्रु में समान धीरजवाला,
बुराई और अपनी प्रशंसा को समान समझने वाला गुणातीत
कहलाता है।

अठारहवें अध्ययन में सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के
आधार पर कर्म और कर्त्ता के तीन-तीन भेद करते हुए सात्त्विक
कर्म और सात्त्विक कर्त्ता की यही व्याख्या की है कि जो फल
की सिद्धि और असिद्धि में एक समान रहता है।

अन्त में अर्जुन यह कहता है-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

गीता १८।७३

निष्काम कर्मयोग की व्याख्या सुनकर अर्जुन कहने लगा-
"अब मेरी भ्रान्ति दूर हो गई है। अपने कर्त्तव्य-कर्म की स्मृति
आ गई है। अब मैं आपके वचनों को पूरा करूँगा।"

सदाचार की प्रतिमा

श्रीकृष्ण सदाचार की मूर्ति थे। वे मन की पवित्रता के पोषक थे। गीता में उन्होंने स्वयं कहा है-

ध्यायतो विषयान्मुसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

गीता २।६२, ६३

विषयों का चिन्तन करते हुए पुरुष की उन विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति से राग उत्पन्न होता है। राग से क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्रोध से अविवेक होता है। अविवेक से स्मृति में विकार, स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से वह नष्ट हो जाता है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

गीता १६।२१

नरक के तीन दरवाजे हैं-काम, क्रोध और लोभ, अतः इन तीनों को छोड़ देना चाहिए।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

गीता १६।२३

जो मनुष्य शास्त्र की विधि को छोड़कर अपनी इच्छा से वर्तता है वह न सिद्धि को प्राप्त करता है, न सुख को और न परमगति को।

गीता में उनके ये उपदेश कथनमात्र ही नहीं हैं, अपितु श्रीकृष्ण ने इनको जीवन में भी ढाला था।

महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पहले श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा से कहा था-

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।

हिमवत्पाश्वर्षमास्थाय यो मया तपसार्जितः॥

समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।

सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम से सुतः॥

सौप्तिकपर्व १२।३०, ३१

मैंने १२ वर्ष तक रुक्मिणी के साथ हिमालय में ठहरकर महान् घोर ब्रह्मचर्य का पालन करके सनत्कुमार के समान तेजस्वी प्रद्युम्न नाम के पुत्र को प्राप्त किया था। विवाह के पश्चात् १२ वर्ष तक घोर ब्रह्मचर्य को धारण करना उनके संयम का महान् उदाहरण है।

ऐसे संयमी और जितेन्द्रिय पुरुष का रूप पुराणकारों ने

कितना बीभत्स और घृणास्पद बना दिया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण का वासनात्मक रूप देखिए-

‘एक दिन नन्द जी वृन्दावन में गये। कृष्ण ने आकाश बादलों से युक्त बना दिया। इतने में राधा कृष्ण के पास गई। बालक को राधा ने ले-लिया। वह हँसने लगी। कामवश उसे बगल में लेकर छाती से लगाकर चूम लिया। इतने में राधा ने सैकड़ों रत्न के घोड़ों से परिपूर्ण माया से बना सुन्दर मण्डप देखा। वह देवी मण्डप देखकर प्रसन्नता से अन्दर गई। वहाँ उसने कामना के योग्य युवा श्यामसुन्दर हँसमुख पुरुष को पुष्पशय्या पर सोते देखा। अपनी गोदी को बालक से खाली और उस नवयुवक को देखकर सब-कुछ जानते हुए भी चकित हो गई। उस कमलमुख वाले को कृष्ण कहने लगे। हे प्रिये ! चारपाई पर आ जा और मुझे बगल में ले-ले। मैं बैठा हूँ, इसी प्रकार समय जा रहा है। मेरी बगल और शिर में चरणकमल अर्पण करो। इतने में ब्रह्मा कृष्ण के सामने आये। ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण को पकड़ दिया। ब्रह्मा राधा तथा कृष्ण को प्रणाम करके अपने घर गये। राधा कृष्ण को प्रणाम करके कृष्ण के पलंग पर गई। कृष्ण ने चबाया हुआ पान राधा को दिया। कृष्ण ने बचाया हुआ पान राधा से मांगा। काम जिसके चरणों को स्पर्श करता था, वही कृष्ण काम के वशीभूत हो गये। कृष्ण ने हाथ से पकड़ कर राधा को बगल में ले-लिया। उसके कपड़े ढीले कर दिये और चतुर्विध चुम्बन किया। काम-युद्ध की समाप्ति पर वह तिरछी नज़रवाली राधा मुस्कराने लगी। वह कृष्ण युवावस्था को छोड़कर फिर बालक रूप हो गये। राधा ने कृष्ण को बालकरूप में भूख से पीड़ित रोते हुए देखा। वह राधा यशोदा को बालक देकर बातचीत करने लगी। यशोदा ने बालक को लेकर चूमा और स्तन दिया। राधा बाहर चली गई। वह अपने घर में अपना काम करने लगी। वह राधा नित्य रात को को कृष्ण से भोग करती रही।

(ब्रह्मवैवर्त पु० खं० ४। अ० १६)

श्रीमद् भागवतपुराण स्कन्द १० के १२लें अध्याय में श्रीकृष्ण के वेणुगीतगान द्वारा गोपियों के कामोद्दीपन का वर्णन है। अध्याय २२वें में इन गोपियों का वेणुगीत से कामातुर होकर कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायनी देवी की पूजा का उल्लेख है। एक दिन ये गोपियाँ पूजा से पूर्व अपने वस्त्र उतार कर यमुना में स्नान कर रही थीं। श्रीकृष्ण उनके वस्त्र लेकर कदम्ब के पेड़ पर चढ़ गये। जब इन स्त्रियों ने उनसे वस्त्र माँगे तो उन्होंने इन्हें जल से नग्न बाहर निकलकर वस्त्र

लेने का आग्रह किया। ये नितान्त नग्न थीं। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। विवश होकर ये अपने हाथों से गुप्त अङ्गों को छिपाकर बाहर आईं। कृष्ण इतने से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने उनको अपने दोनों हाथों को उठाकर सूर्य को प्रणाम करने के पश्चात् ही वस्त्र लौटाये। यह है भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा चीरहरण लीला का संक्षिप्त वर्णन। इसी अवसर पर कृष्ण ने उनके साथ आगामी शरत्पूर्णिमा को रास-विहार करने का वचन दिया।

शरत्पूर्णिमा की रात्रि को श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के मन को हरने वाले वेणुगीत गाने आरम्भ किये। इन गीतों को सुनकर ब्रजगोपिकाएँ पहले से भी अधिक कामातुर हो गईं। वे अपने माता, पिता, भाई और पतियों के रोकने पर भी न रुककर कृष्ण के पास वन में चली गईं। श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा कि तुम यहाँ रात्रि में क्यों आई हो, अपने घरों को चली जाओ। वहाँ तुम्हारे घरवाले तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। परपुरुष के साथ गमन करना एक महापाप है। यह सुनकर गोपियाँ बहुत दुखी हुईं और अपनी कामातुरता प्रकट करती हुई उनसे अनुनय-विनय करने लगीं। अन्त में कृष्ण उनके प्रेम को देखकर हँसते हुए दयावश उनसे रासक्रीड़ा करने लगे। भागवत में लिखा है—

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुः,
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्ब्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपथिं रमयाञ्चकार॥

भागवत १०।१२९।४६

हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियों के हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवन से देखना और मुस्कराना—इन क्रियाओं के द्वारा गोपियों के दिव्य कामरस को, परमोज्ज्वल भाव को उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीड़ा द्वारा आनन्दित करने लगे।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो,
गायन्त्यस्तं तडित् इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥

भागवत १०।१३३।१८

पैरों का चलाना, भुजाएँ कँपाना, हँसकर भौंहें चलाना, कमर लचकाना, कुचों का चञ्चल करना, कपोलों के ऊपर कुण्डलों के हिलाने से गोपियों के कमलमुख से पसीना निकल आया,

जूड़ा और नाड़ा ढीला पड़ गया। और वे कृष्ण का गान करती हुई मेघमण्डल में बिजली की भाँति शोभा पाने लगीं।

कस्याश्चिन्नाटचविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्।
गण्डं गण्डे सन्द्यत्या आदात्ताम्बूलचर्वितम्॥

भागवत १०।१३३।१३

एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे। उनकी छटा से उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलों को भगवान् श्रीकृष्ण के कपोल से सटा दिया और भगवान् ने उसके मुँह में अपना चबाया हुआ पान दे दिया।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।

रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारोमोऽपि लीलया॥

भागवत १०।१३३।२०

यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं—उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी की भी आवश्यकता नहीं है—फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेल में उनके साथ विहार किया।

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः।

प्रामृजत् करुणः प्रेरणा शन्तमेनाङ्गपाणिना।

भागवत १०।१३३।२२

जब बहुत देर तक गान और नृत्य आदि विहार करके गोपियाँ थक गईं तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम से स्वयं अपने सुखद करकमलों के द्वारा उनके मुँह पोंछे।

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः

स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः

सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः॥

भागवत १०।१३३।२६

हे राजन ! सत्यसङ्कल्प, प्रेमी स्त्रियों के बीच घिरे हुए श्रीकृष्ण ने अपने वीर्य को रोककर, शरत्काल के चन्द्रमा की शोभायमान रात्रि में शास्त्र-कथित सब रसयुक्त क्रीड़ाओं को किया।

ब्रह्मवैवर्त में बाणासुर के मुख से यहाँ तक कहलवाया गया है—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परम्लम्पटः।

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च॥

कृष्णजन्मखण्ड ११५।६१।६२

अर्थात् कृष्ण साक्षात् जार, दुष्ट तथा अतिलम्पट थे। उन्होंने

मथुरा में आकर कुब्जा के साथ व्यभिचार किया और उसे मार डाला।

गोपालसहस्रनाम में कहा है-

गोपालकामिनी जारश्चौरजारशिखामणिः।

श्लोक १।३७

अर्थात् कृष्ण चोर थे और व्यभिचारियों में शिरोमणि थे।

विष्णुपुराण में कहा है-

ता वीक्ष्यमाणाः प्रतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।

कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिक्रियाः॥

विष्णुपुराण १।१३।५९

गोपियाँ पतियों, पिताओं और भाइयों द्वारा देखे जाने पर भी रात्रि में कृष्ण के द्वारा रतिक्रिया में लगी रहीं।

राधा कौन थी ?

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह।

सार्द्धं रायणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥

कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।

गोलोके गोपकृष्णांश सम्बन्धात्कृष्णमातुलः॥

ब्रह्म० प्रकृति ४९।३२, ३७, ४०

राधा वृषभानु वैश्य की कन्या थी। रायण वैश्य के साथ उसका सम्बन्ध किया गया। वह रायण यशोदा का भाई था। गोलोक में वह कृष्ण का अंश था, परन्तु धरती पर कृष्ण का मामा था। राधा उसकी पत्नी थी। सो राधा तो कृष्ण की मामी ठहरी। मामी और भांजे का प्रेम-व्यापार कहाँ तक उचित है ?

पुराणकारों ने कृष्ण के स्वरूप को बिगाड़ दिया। उनके पवित्र व्यक्तित्व को घृणित और बीभत्स बना दिया।

जुए के विरोधी

वे जुए के घोर विरोधी थे। जुए को एक बहुत ही बुरा व्यसन मानते थे। जब वे काम्यक वन में युधिष्ठिर से मिले तो उन्होंने युधिष्ठिर को कहा-

आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः।

वारयेयमहं द्यूतं बहून् दोषान् प्रदर्शयन्॥

वनपर्व १३।१, २

हे राजन् ! यदि मैं पहिले द्वारका में या उसके निकट होता तो आप इस भारी संकट में न पड़ते। मैं कौरवों के बिना बुलाये ही उस द्यूत-सभा में जाता और जुए के अनेक दोष दिखाकर उसे रोकने की पूरी चेष्टा करता।

मदिरा के विरोधी

वे मदिरापान के घोर विरोधी थे। उन्होंने यादवों के मदिरापान

पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और उसका सेवन करने वाले के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था की थी।

अद्यप्रभृति सर्वेषु वृष्णयन्धककुलेष्विह।

सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः॥ मौसलपर्व

यश्च नोऽविदितं कुर्यात्पेयं कश्चिन्नरः क्वचित्।

जीवन् स कालमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः॥

मौसलपर्व १।२९, ३०, ३२

आज से समस्त वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्रियों के यहाँ कोई भी नगरनिवासी सुरा और आसव तैयार न करे। यदि कोई मनुष्य हम लोगों से छिपकर कहीं भी मादक पेय तैयार करेगा तो वह अपराधी अपने बन्धु-बान्धवोंसहित जीवित अवस्था में सूली पर चढ़ा दिया जाएगा।

मैत्री-भावना

श्रीकृष्ण आदर्श मित्र थे। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च।

मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते॥

महा० भीष्म १०७।३३

तुम्हारा भाई अर्जुन मेरा मित्र, सम्बन्धी और शिष्य है। उसके हित के लिए मैं अपना मांस भी काटकर दे सकता हूँ।

माता-पिता के प्रति श्रद्धा

महाभारत के युद्ध की समाप्ति के पश्चात् उन्होंने द्वारका जाकर माता-पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा-"हे अर्जुन ! यद्यपि तुम सबसे बिछुड़ने को हमारा जी नहीं चाहता, परन्तु बहुत दिनों से हमने अपने माता-पिता और यादवों को नहीं देखा है। उनसे मिलने की हमारे चित्त में बड़ी उत्कण्ठा है। इसलिए मेरी ओर से तुम महाराज युधिष्ठिर को कहो कि वह मुझे द्वारका जाने की अनुज्ञा दें।"

विनम्रता

राजसूय यज्ञ में जब सबके कर्तव्य-कर्म निश्चित कर दिये गये तब श्रीकृष्ण ने सब ब्राह्मणों के चरण धोने का काम अपने ज़िम्मे लिया। यह उनकी विनम्रता की चरम सीमा थी।

चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्।

सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम्॥

सभा० ३५।१०

वे जब वेदव्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती और युधिष्ठिर आदि बड़ों से मिलते तो उनके चरण छूते थे।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽभिगम्य,

कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम्।

कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ,
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥

आदि १९०।२०

‘मैं कृष्ण हूँ’, ऐसा कहकर उन्होंने आजमीढवंशी राजा युधिष्ठिर के चरण-स्पर्श किये।

अमर्यादा के विरोधी

उन्होंने देखा कि यादव मर्यादाओं का त्याग कर रहे हैं। निकृष्टतम कर्म करने में भी वे लजाते नहीं हैं। ब्राह्मणों, देवताओं, वृद्धों, पितृगणों तथा गुरुओं का वे अपमान करने लगे हैं। वे शराब के नशे में चूर रहते थे। एक दिन वे प्रभास नगर में इकट्ठे हुए और आपस में लड़-कटकर मर गये। श्रीकृष्ण ने उन सबको समाप्त करा दिया।

गोभक्ति

वे गोभक्त थे। गोपों के उत्सव में हल और जुए की पूजा होती थी। श्रीकृष्ण ने गोपों को समझाया कि वे इस के स्थान पर गोपूजन करें। हमारे देवता तो अब गौएँ हैं, नकि गोवर्धन पर्वत। गोवर्धन पर घास होती है। उसे गौएँ खाती हैं और दूध देती हैं। इससे हमारा गुजारा चलता है। चलो गोवर्धन और गौओं का यज्ञ करें। गोवर्धन का यज्ञ यह है कि उत्सव के दिन सारी बस्ती को वहीं ले-चलें। वहां होम करें। ब्राह्मणों को भोजन दें। स्वयं खाएँ औरों को खिलाएँ। कार्तिक का महीना है। पहाड़ फूलों से लद रहा है। हम इन फूलों से गायों को सजाएँ। इन्हें फिराएँ, खिलाएँ और घुमाएँ। इस घटना से पता चलता है कि वे परम गोभक्त थे, इसलिए उनका एक नाम गोपाल भी है।

ईश्वरोपासक

श्रीकृष्ण ईश्वरोपासक थे। वे नित्यप्रति सन्ध्या, हवन और गायत्री-जाप करते थे। यदि वे स्वयं ईश्वर थे तो क्या ईश्वर अपनी उपासना करेगा ? दूतकर्म पर जाते समय मार्ग में सूर्यास्त के समय उन्होंने रथ रुकवाकर सन्ध्या की।

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।

रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥

महा० उद्योग० ८४।२१

जब सूर्यास्त होने लगा तब श्रीकृष्ण ने शीघ्र ही रथ से उतरकर रथ खोलने का आदेश दिया और पवित्र होकर सन्ध्योपासना में लग गये।

विदुर के घर पर भी उनके सन्ध्या-वन्दन करने का वर्णन मिलता है।

कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलङ्कृतः।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत् माधवः ॥

उद्योग १४।६

स्नान, सन्ध्या तथा जप करने के पश्चात् अग्निहोत्र करके श्रीकृष्ण ने समलङ्कृत होकर उदयकाल में सूर्य का उपस्थान किया।

भागवत पुराण में भी उनकी ईश्वरभक्ति की ओर सङ्केत किया गया है-

ब्राह्ममुहूर्ते उत्थाय वायुं पस्पृश्य माधव।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥

भागवत १०।७०।४

श्रीकृष्ण ब्राह्ममुहूर्त में उठकर पवित्र जल से हाथ-मुँह धोकर अत्यन्त प्रसन्न हो हृदय में प्रकृति से परे ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म का ध्यान करने लगे।

अथोप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि

क्रियाकलापं परिधाय वाससी।

चकार सन्ध्योपगमादि तत्तमो

हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥

भागवत १०।७०।६

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वच्छ एवं पवित्र जल में डुबकी लगाकर स्नान किया फिर स्वच्छ धोती पहनकर एवं दुपट्टा ओढ़कर बड़ी श्रद्धा और कुशलता के साथ विधिपूर्वक सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म किया।

घातक के प्रति कोई प्रतीकार नहीं

श्रीकृष्ण ने जब अपनी मृत्यु का समय सन्निकट समझा तब सम्पूर्ण इन्द्रियवृत्तियों का निरोध करके महायोग समाधि का आश्रय लिया। वे पृथिवी पर लेट गये। उसी समय जरा नामक व्याध मृगों को मारकर उस स्थान पर आया। उस समय श्रीकृष्ण योगयुक्त होकर सो रहे थे। मृगों में आसक्त हुए उस व्याध ने श्रीकृष्ण को भी कोई मृग समझा और अत्यन्त उतावली के साथ बाण मारकर उनके पैर के तलवे में घाव कर दिया। फिर उस मृग को पकड़ने के लिए जब वह निकट आया तब उसने योग में स्थित पीताम्बरधारी और महातेजस्वी श्रीकृष्ण को देखा।

मत्वाऽऽत्मानं त्वपराद्धं तस्य

पादौ जरा जगृहे शङ्कितात्मा।

आश्वासयंस्तं निभृतं महात्मा

अगच्छदूर्ध्वदिवि व्याप्य लक्ष्म्या ॥

मौसलपर्व ४।२४

अब तो वह जरा नामक व्याध अपने आपको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत डर गया। उसने श्रीकृष्ण के दोनों पैर पकड़ लिये। तब महात्मा श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया और अपनी क्रान्ति और यश से पृथ्वी और आकाश को व्याप्त करके मोक्षधाम को चले गये।

महाभारत काल के सर्वमान्य महापुरुष

श्रीकृष्ण महाभारत काल के सर्वमान्य महापुरुष थे। राजसूययज्ञ के अवसर पर भीष्म पितामह ने प्रधान अर्घ्य देते समय उनके विषय में यह कहा था-

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा।

नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।

सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते॥

महा० सभापर्व ३८।१९।२०

वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता तो हैं ही, बल में भी सबसे अधिक हैं। श्रीकृष्ण के सिवा इस युग के संसार में मनुष्यों में दूसरा कौन है? दान, दक्षता, शास्त्र-ज्ञान, शौर्य, आत्म-लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि, और पुष्टि-ये सभी गुण श्रीकृष्ण में विद्यमान हैं।

जब वे धृतराष्ट्र के दरबार में पहुँचे तो सभी ने श्रीकृष्ण के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित किया।

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः।

आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम्॥

महा० उद्योगपर्व ९४।३५

उस समय भीष्म और द्रोण आदि सब लोग श्रीकृष्ण का सम्मान करने के लिए राजा धृतराष्ट्र को आगे करके अपने-अपने आसनों से उठकर आगे बढ़े।

युद्ध की समाप्ति पर जब श्रीकृष्ण द्वारका जाने लगे तब महाराज युधिष्ठिर ने उनकी प्रशंसा की। उन्होंने कहा-"हे वासुदेव ! आपकी सहायता से हमने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया। आप बड़े सुख से द्वारका जाएँ। मामा वासुदेव और देवकी को हमारा प्रणाम कहना। हमारा हृदय तुम्हें आँखों से ओझल करना नहीं चाहता, परन्तु इस समय हम तुम्हें रोक नहीं सकते। हमें भूल न जाना और अश्वमेधयज्ञ के समय अवश्य आना। हे यशोदानन्दन ! ये सब धन-रत्न और ऐश्वर्य तुमने ही जीतकर हमको दिये हैं, सो जाते समय जो-जो अच्छे रत्न आदि पदार्थ तुम्हें पसन्द हों, वे साथ ले-जाएँ। यह सब-कुछ तुम्हारा ही है।

श्रीकृष्ण की विशेषताएं

लेखक:- श्रीमती सुशीला भगत प्रधान
स्त्री आर्य समाज मॉडल टाऊन जालन्धर

ज्ञान-प्रेमी, ध्यान प्रेमी, निष्काम कर्म-प्रेमी कृष्ण थे।

धर्म-नीति, राजनीति, श्रेष्ठ युद्धनीति में तीक्ष्ण थे॥

पांचजन्य का नाद करके, मनुष्यमात्र को जगाया था।

आदर्श ब्रह्माचार्य का पालन करके, प्रद्युम्न को पाया था॥

एकपत्नीव्रत पालक थे वे, गौवंशों के महारक्षक थे।

अन्याय, अनीति, अत्याचार के, साक्षात् वे तक्षक थे॥

सुदर्शन चक्र के धारक थे वे, दुष्टों के संहारक थे।

प्रातः स्नायं उपासना करते, ईश्वर के सच्चे उपासक थे॥

वेद शास्त्रों में निपुण थे वे, यज्ञ विज्ञान के पोषक थे।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, श्रेष्ठता के द्योतक थे॥

ऊँच नीच का भेद न रखते, सुदामा को मित्र बनाया था।

दुर्योधन का गर्व नाश कर, भोजन विदुर के घर खाया था॥

आत्मा को अविनाशी बतलाकर, अर्जुन का मोह मिटाया था।

गीता का उपदेश देकर, यजुर्वेद का दिव्य ज्ञान कराया था॥

कर्म में अधिकार है अपना, लौकिक फल न चाहें बताया था॥

गीता का ये संदेश सुनाकर, निष्काम कर्म सिरजलाया था॥

कर्मों को कुशलता से करना, योग का एक अंग बताया था॥

श्रद्धावान् को ज्ञान मिलता, ये दिव्य सन्देश सुनाया था॥

वेद दर्शन ग्रन्थों के ज्ञाता, श्रीकृष्ण लोक के नायक थे।

वैदिक धर्म संस्कृति के रक्षक, आदर्श के परिचायक थे॥

धर्माचरण से युक्त हों सब, अधर्म से कोई न अशान्त हों।

कृष्ण की शिक्षा मान्य हो जहाँ, ऐसा भारत प्रशान्त हो॥

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में जो श्रद्धा-सुमन उन्हें अर्पित किये, वे मननीय हैं।

"देखो, श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिनमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त कुछ भी बुरा कर्म किया हो, ऐसा नहीं लिखा।"

योगी राज श्री कृष्ण चन्द्र महाराज

—ले० पं. नन्द लाल निर्भय, फरीदाबाद (हरियाणा)

योगी राज श्री कृष्ण जी, ईश्वर भक्त महान।
भारत मां की कर गए, जग में ऊँची शान॥
जग में ऊँची शान, गए कर वीर निराले।
देश भक्त बलवान, बहादुर थे मतवाले।
वासुदेव के लाल, कभी भी हुए न रोगी।
सकल गुणों की खान, निराले थे वे योगी।

भारत का था दोस्तो, तब बेढंगा हाल।
चलते थे दुष्टात्मा, निशदिन वहां कुचाल॥
निश-दिन यहां कुचाल, नास्तिक जन चलते थे।
जरासंध, शिशुपाल, सुशर्मा शब्द चलते थे॥
दुर्योधन अरु कंस, रहे थे कर शैतानी।
जनता को वे तंग, रहे थे कर अभिमानी॥

श्री कृष्ण यह देखकर, दुःखी हुए बलवान।
दुखियों का संकट हरूं, ली थी दिल में ठान॥
ली थी दिल में ठान, कंस को जा ललकारा।
मल्ल युद्ध में, महावीर ने पापी मारा॥
अपने नाना उग्रसेन को, राज्य दिया था।
मथुरा की प्रजा का, संकट दूर किया था॥

लेकर अर्जुन, भीम को, मगध गए बलवान।
जरासंध से कर दिया, लड़ने का ऐलान॥
लड़ने का ऐलान, किसी का खौफ न खाया।
जरासंध को भीमसेन, द्वारा मरवाया॥
दुर्वचनी शिशुपाल, न समझाने से माना।
भेज दिया यमलोक, कृष्ण ने वह मस्ताना॥

दुर्योधन था लालची, करता था अन्याय।
समझाया श्री कृष्ण ने, काफी किए उपाय॥
काफी किए उपाय, नहीं समझा अन्याई।
कुरुक्षेत्र में हुई, भयंकर यहां लड़ाई॥
कर्ण-दुशासन, भीष्म, द्रोण सब पापी हारे।
दुर्योधन मिट गया, गए सब मिट हत्यारे॥

बना युधिष्ठिर को दिया, दुनिया का सम्राट।
योगी राज श्री कृष्ण के, न्यारे ही थे ठाट॥
न्यारे ही थे ठाट, कृष्ण थे अद्भुत त्यागी।
मानवता के दूत, धर्म के थे अनुरागी॥
देशवासियो ! श्री कृष्ण की, शिक्षा मानो।
देव पुरुष को, ठीक तरह अब तो पहचानो॥

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज के नियम

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रेस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।